वैदिक धर्म

सितम्बर १९६४

... पैसे

श्री पं. सातवलेकर - विशेषांक



उद्धृताः श्रुतयो येन विश्वेऽस्मिंश्च प्रकाशिताः ।
विश्रुतो वेदमूर्तिः स शोभमानोऽत्र राजते ॥

वैदिक धर्म

वर्ष ४५ : अंक ९ : सितम्बर १९६४

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

'वैदिक धर्म' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६२, विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. बलसाड]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित		मूल्य	डा.व्य.
१	ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२	यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३	सामवेद संहिता	२)	.५०
४	अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित			
५	यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६	सामवेद संहिता	३)	.५०
७	यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८	यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९	यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१०	यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता– (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र सोम मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

	(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	१२)	२)
१	अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२	इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३	सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४	मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता– (द्वितीय भाग)

अश्विनौ आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव।
इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

	अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१	अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२	आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३	रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४	उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५	अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६	विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता– (तृतीय भाग)

४	उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५	अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६	मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

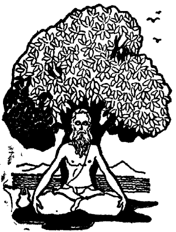
(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	.२५
३ शुनःशेप	,,	,,	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	.२५
५ काण्व	,,	,,	२)	.२५
६ सव्य	,,	,,	१)	.२५
७ नोधा	,,	,,	१)	.२१
८ पराशर	,,	,,	१)	.२५
९ गोतम	,,	,,	२)	.३७
१० कुत्स	,,	,,	२)	.३७
११ त्रित	,,	,,	१.५०	.३१
१२ संवनन	,,	,,	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	.५०	.१९
१४ नारायण	,,	,,	१)	.२५
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि	,,	,,	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१)
२० भरद्वाज	,,	,,	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

वैदिकधर्म

ऐश्वर्यवान् परमात्मा दीर्घायु प्रदान करें



सहस्राक्षेण शतवीर्येण
शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयाति
अति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥

(अथर्व. ३।११।३)

(सहस्राक्षेण) सहस्रों शक्तियोंसे (शतवीर्येण) सैंकड़ों वीर्यसे तथा (शतायुषा हविषा) सैंकड़ों वर्षकी आयुसे युक्त यज्ञके द्वारा मैं (एनं आहार्षं) इस पुरुषको ऐश्वर्यवान् परमात्माके पास लाया हूँ। (इन्द्रः) वह शक्तिशाली परमात्मा (विश्वस्य दुरितस्य अति पारं) सम्पूर्ण आपत्तियों एवं कष्टोंसे पार कराकर (एनं) इस पुरुषको (शरदः नयाति) चिरकाल तक ले जावे-जीवित रक्खे।

अनेक शक्तियोंसे तथा दीर्घायुष्य प्रदान करनेवाले यज्ञके द्वारा मैंने इस पुरुषको परमात्माके हाथोंमें सौंप दिया है, वह दयालु परमात्मा इस श्रेष्ठ पुरुषको जगत्के कल्याणार्थ आपत्तिरहित सौ वर्षकी आयु प्रदान करे।

संपादकीय

सितम्बर मासके १९ ता. को सुप्रसिद्ध वेदविद्वान् श्री पं. श्री. दा. सातवलेकरजी अपने ९८ वें वर्षमें पदार्पण कर रहे हैं, यह वस्तुतः हम सभीके लिए आनन्दका विषय है।

अनन्त एवं अगाध समुद्रकी छातीको चीरते हुए अपनी मंजिलकी तरफ आगे बढते हुए जहाजोंके लिए जिस प्रकार प्रकाशगृह (Light Houses) मार्ग प्रदर्शक होते हैं, उसी प्रकार जीवनके सुखदुःखमय लहरोंसे संघर्ष करते हुए मानवके लिए प्रत्येक महापुरुषका जीवन प्रकाशस्तम्भके समान है।

सभी महापुरुषोंका जीवन अपनी अपनी विशेषतायें लिए हुए रहता है, और उन्हीं विशेषताओंके सूत्रके सहारे वह आगे बढता चला जाता है। इसी प्रकार श्री सातवलेकरजीके हाथमें 'वेदविद्या' का सूत्र आया और वे उसीको पकडकर आगे बढते गए, और आज उनके अनथक एवं सतत प्रयत्नोंने उन्हें वेदविद्याके मूर्धन्य विद्वानोंकी पंक्तिमें ला खडा किया है। हस्तगत अर्थकरी चित्रकलाको भी छोडकर वेदविद्याका आश्रयण ही पंडितजीके आजके यशका रहस्य है।

सीधासादा रहन सहन, निष्कपट व्यवहार, सफेद वेषभूषा, वादकुशल पर वादविवादमें प्रतिपक्षीपर क्रोध न करनेवाले, संयमी, शांत, अपने दोष विनम्रभावसे स्वीकार करनेवाले, उदारमना, यह श्री पंडितजीका प्रत्यक्षभूत शब्दचित्र है।

वेद और भारतीयसंस्कृतिकी साधना ही उनके जीवनकी श्रेष्ठ तपस्या है। लेखनी, वाणी और शरीर तीनोंसे उन्होंने भारतीय संस्कृतिकी सर्वांगिण सेवा की है।

हैदराबादमें रहते हुए इन्होंने 'यज्ञोंमें पशुहिंसा' के विरुद्ध एक प्रचण्ड आन्दोलन शुरू किया था। उस समय स्थानीय किसी धनिकने 'अजमेध' का आयोजन किया था, उसीकी प्रति क्रिया स्वरूप पण्डितजीका यह आन्दोलन था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस तीव्र आन्दोलनके सामने उस यजमानको झुकना ही पडा। पाश्चात्य पण्डितोंने यज्ञमें पशुहननके सिद्धान्तको वेदसम्मत बताया था, उसका खण्डन करके पण्डितजीने यथार्थ सत्य सिद्धांत लोगोंके सामने रखा। गोमेधका अर्थ उन्होंने गौसंवर्धन किया। इस प्रकार उस समय समाजमें विशेषकर ब्राह्मणसमाजमें प्रचलित अनेक कुरीतियोंपर उन्होंने बडे तीव्र प्रहार किए। उन प्रहारोंसे उस समयका सारा ब्राह्मणसमाज तिलमिला उठा।

कई विद्वानोंका यह भी कहना है, कि वेदोद्धारकोंमें महर्षि दयानन्दके बाद दूसरे नंबर पर यदि किसीका स्थान है, तो वह पण्डित सातवलेकरजीका ही है। संभव है कि पण्डितजीके प्रति उन विद्वानोंकी आदरातिशयता या श्रद्धातिशयताके कारण उनके कथनमें अतिशयोक्ति हो, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदके मूर्धन्य विद्वानोंमें उनका भी एक विशिष्ट स्थान है।

पण्डितजीका जीवन एक वेदोद्धारक, समाजसुधारक, पतितोद्धारक, क्रान्तिकारी, दार्शनिक एवं योगीका जीवन है। वेदोद्धारक, समाजसुधारक एवं क्रान्तिकारीके रूपमें वे विख्यात हैं ही, पर 'छूत और अछूत' नामक अपने ग्रंथ द्वारा अस्पृश्यतानिवारण सम्बन्धी जो कार्य किया है, वह भी पण्डितजीका यशोवर्धक ही है। उनके दार्शनिकरूपका दर्शन पाठकोंको उनकी 'गीता-पुरुषार्थ बोधिनी' टीकामें हो सकते हैं। तथा उनके योगीरूपके दर्शनके लिए उनके द्वारा लिखित पुस्तकोंके अलावा उनके स्वयंका जीवन ही एक योगकी पुस्तक है। उनके जीवनके पृष्ठोंको पढकर ही पाठक उनके योगीपनको जान सकता है।

इस प्रकार अनेक रूप समन्वित जीवनको व्यतीत करनेवाले श्री पण्डितजी ९८ वें वर्षमें प्रवेश कर रहे हैं, यह वस्तुतः सबके लिए हार्दिक प्रसन्नताका विषय है।

इस शुभावसरपर हम सभी भारतीय संस्कृतिके उपासकोंकी यह शुभ कामना है कि वे 'भूयश्च शरदः शतात्' होकर हमारा पथ प्रदर्शन करते रहें।

दीर्घायु बननेका सुलभ साधन



(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर, विद्यामार्तण्ड)

★

मनुष्य दीर्घायु बनना चाहता है। वह जानता है कि भगवान् श्रीकृष्णजी १२५ वर्ष जीवित रहे थे। उनके बडे भाई बलरामदादा भी उतने ही वर्ष जीवित रहे थे। उपनिषदोंमें आयुकी जो गणना की है वह ऐसी की है—

८	वर्ष बालपनकी आयु
२४	,, ब्रह्मचर्यकी आयु
४४	,, गृहस्थाश्रमकी आयु
४८	,, वानप्रस्थाश्रमकी आयु
१२४	मनुष्यकी आयु

यह गणना उपनिषदोंमें लिखी है, इसलिये हम इस आयुको विश्वसनीय मान सकते हैं और इतनी आयुतक मनुष्य जीवित रह सकता है ऐसा हम कह सकते हैं।

दो सहस्र वर्ष पूर्व ग्रीक लोग भारतमें आकर रहे थे। उन्होंने लिख कर रखा है कि भारतवर्षमें १४० वर्षकी आयुमें भी लोग पैदल चलकर प्रवास भी कर सकते थे। ऐसा सामर्थ्य उस समय भारतीय लोगोंमें था।

उपनिषदोंमें ' त्रयो धर्मस्कन्धाः ' कहा है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ ये तीन आश्रम तीन धर्मस्कन्ध हैं। इनकी आयु गिनी जाय तो २४+४४+४८ मिलकर ११६ वर्ष होते हैं। यह आयु भी सौ वर्षोंसे अधिक हुई है। ये तीन आश्रम जनताकी सेवा सवृद्धि करनेके आश्रम हैं। इन आश्रमोंके पश्चात् संन्यासाश्रम होगा। उसमें प्रवास करके जनताको धर्मोपदेश करनेका कार्य होता है।

इस अन्तिम आयुमें प्रवास करके धर्मोपदेश करना यह कार्य बिना परिश्रमके नहीं हो सकता। इस आयुमें इतने भ्रमण करके उपदेश करनेके कार्य करनेके योग्य शरीरमें शक्ति रहनी चाहिये।

जन्मसे प्रारम्भके ८ वर्ष बालकपनके आयुके होते हैं। इसके नंतर वह गुरुकुलमें जाता है और २४ वर्ष वहां रहकर विद्याध्ययन करता है। इस आयुमें ब्रह्मचर्य पूर्ण रूपसे रहना चाहिये। वीर्य स्थिर रहे, वीर्यपात न हो, ऐसा मन सामर्थ्यवान् बनना चाहिये। विद्याध्ययन तो इस आयुमें करना ही होता है। इस समय वीर्यभ्रंश होनेकी कल्पना भी मनमें नहीं आनी चाहिये। आसन, प्राणायाम आदि करके शरीरको सुदृढ बनाना चाहिये। आसनोंके व्यायामसे शरीर सुडौल तथा सामर्थ्यवान् बनता है, प्राणायामसे प्राणका स्थान छाती फेंफडा आदि सुदृढ होता है। यम, नियमके पालन करनेसे और आसनों और प्राणायामका अभ्यास करनेसे शरीरावयव सुदृढ बनते हैं। लोग केवल व्यायाम करते हैं, प्राणायामकी ओर ध्यान नहीं देते। यह तरुणोंको अच्छा नहीं है। तरुणोंको सूर्यनमस्कार, आसन आदि व्यायाम करने चाहिये वैसे प्राणायाम भी करने चाहिये।

छठे या आठवें वर्षसे आसन सूर्यनमस्कार आदि व्यायाम शुरू करने चाहिये, वे आयुके ७० या ८० वर्षतक किये जा सकते हैं। प्रारंभमें १०।१२ बार ये व्यायाम किये जायें और पूरे तारुण्यमें ४००।५०० बार किये जांय इससे अत्यंत लाभ होता है। सूर्यनमस्कार प्रतिदिन १२०० बार करनेवाले तरुण महाराष्ट्रमें कई हैं और इस व्यायामसे उनका शरीर अच्छा सुदृढ होता है। साधारण रीतिसे सौ दोसौ बार करनेवाले भी अच्छे सामर्थ्यवान् होते हैं।

सवेरे ५ या ६ बजे स्नान करके सूर्यनमस्कारका व्यायाम किया जा सकता है जिससे स्त्री पुरुषोंको लाभ होता है। स्त्रियां छातीको नीचे भूमिपर सूर्यनमस्कारमें न लगावें और पुरुष छातीको भूमिपर लगावें। इतना ही ख्याल रखना चाहिये। इस व्यायामसे स्त्री पुरुषोंको उत्तम लाभ होता है।

यह व्यायाम शरीरके लिये उत्तम है और इस व्यायामसे शरीर दीर्घायु भी हो सकता है। शरीरके सब स्नायुओंको उत्तम व्यायाम सूर्यनमस्कारके व्यायामसे मिलता है, यह इस व्यायामसे प्राप्त होनेवाला लाभ है। सूर्यनमस्कार करनेके समय प्राणायाम भी किया जासकता है। व्यायामके साथ प्राणायाम करनेके अनेक लाभ हैं। परंतु व्यायाम और प्राणायाम ये पृथक् पृथक् भी किये जा सकते हैं और वैसे करनेसे वे लाभदायक भी होते हैं।

प्राणायाममें पूरक, कुंभक, रेचक और बाह्यकुंभक ये होते हैं। प्राण छातीमें भरनेको 'पूरक' कहते हैं, पूरकके पश्चात् वहां उसको स्थिर रखनेको 'कुंभक' कहते हैं, कुंभकके पश्चात् शनैः-शनैः श्वास बाहर निकालनेको 'रेचक' कहते हैं और सब श्वास बाहर निकलनेके पश्चात् उसको बाहर ही रखनेको बाह्यकुंभक बोलते हैं। पूरक, कुंभक, रेचक और बाह्य कुंभक मिलकर प्राणायाम होता है। अन्तःकुंभक और बाह्यकुंभक ये विशेष प्राणायाममें आवश्यक समझे जाते हैं, सबमें आवश्यक नहीं हैं। सब प्राणायामोंमें पूरक और रेचक आवश्यक हैं। अन्तःकुंभक और बाह्यकुंभक न्यूनाधिक करना करनेवालेकी इच्छा और शक्तिपर अवलंबित रहता है।

पूरक, कुंभक, रेचक और बाह्यकुंभक ये प्राणायामके विभाग हैं। इनका साधारण प्रमाण यह है। पूरक १ भाग, कुंभक ४ भाग, रेचक दो भाग और बाह्यकुंभक दो भाग ऐसा साधारण प्राणायाम होता है। कुंभकके कम ज्यादा करनेसे प्राणायाममें अनेक प्रकार होते हैं। परंतु सर्व साधारण रीतिसे १।४।२।२ यह प्राणायाम सर्व साधारणके लिये योग्य है। पूरक जितनी देरीमें किया जाय उसके चार गुणा समयका कुंभक हो, उसके दो गुणे समयमें रेचक करके प्राण बाहर निकाला जाय और उतना ही बाहर रक्खा जाय।

जो प्राणायाम स्वयं करते हैं वे अपनी धारणाशक्तिके अनुसार कुंभक और बाह्यकुंभक करनेका यत्न करें। धारणाशक्ति कम हुई तो कम समय रखें और अपनी शक्ति अधिक रही, तो समय अधिक दें। हमारा विचार ऐसा है कि प्रथम समय कुंभक और बाह्यकुंभकके लिये कमसे कम रखें। और अभ्यास बढता जाय वैसा समय बढावें। यह अच्छा रहेगा।

मनके अन्दरके विचार भी परिशुद्ध रहने चाहिये। इस लिये कहा है—

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते
न मरा इति मन्यसे।
उतो तत् सत्यमित्तव॥ ऋ. ८।९३।५

'हे उत्तम सज्जनोंके अधिपति! जो तू (न मरै इति मन्यसे) मैं नहीं मरूंगा ऐसा मानता है, वह तेरा कथन सत्य है।' 'मैं नहीं मरूंगा' ऐसा विचार मनमें सदा धारण करना चाहिये। तब ऐसा विचार मनमें धारण करनेवालेकी आयु दीर्घ होती है। और वह सुदृढ विचार मनमें धारण करनेवाला दीर्घायु होता है।

'मैं दीन हीन क्षीण हूं, मेरी आयु क्षीण होनेवाली अल्प है। ऐसा कुविचार मनमें रखनेवाला मनुष्य हरएक प्रकारसे क्षीण और दुर्बल होता है। अतः वेदमें कहा है कि—

अहं इन्द्रो न पराजिग्ये।

'मैं इन्द्र हूं, मेरा पराभव नहीं होगा।' 'इन्द्र' का अर्थ ही शत्रुओंका पराभव करनेवाला है। मैं इन्द्र हूं, मैं शत्रुओंका पराभव करनेवाला हूं। इन्द्र देवोंका राजा है, मैं इन्द्र हूं, अतः देवोंका राजा हूं। सर्व दैवी शक्तियां मेरे आधीन हैं। मैं उन सबका उपयोग करनेवाला हूं।

शरीरमें प्रत्येक इन्द्रियमें एक एक देवता है। अतः हमारा यह शरीर देवताओंका मंदिर है। मुखमें ही देखिये—

१ आंखमें सूर्यका अंश है।
२ मुखमें अग्निका अंश है।
३ नासिकामें वायु रहा है।
४ कानोंमें दिशाएं हैं।
५ मस्तकमें अनेक देवताएं हैं।
६ हृदयमें ब्रह्म निवास करता है।
७ पावोंमें पृथिवी है।

इस प्रकार शरीरमें सब तैंतीस देव रहते हैं। इतने देवोंकी शक्ति यहां शरीरमें है यह शरीरका सौभाग्य

है। और मनुष्यका मनुष्यत्व इस कारण महत्वपूर्ण है। मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण तैंतीस देवताओंकी शक्ति कार्य कर रही है। अतः मनुष्य अपने आपको दैवी शक्तियोंका संघ समझे। मनुष्यके शरीरमें तैंतीस देवताएं हैं, अतः मनुष्य तैंतीस दैवी शक्तियोंका समन्वय अपने आपको समझे। अपने आपको हीन, दीन, दुर्बल तथा कर्तृत्वहीन कभी न समझे। मनुष्यका शरीर ही देवताओंका मंदिर है। यह कोई काल्पनिक मन्तव्य नहीं अपितु यह सत्य घटना है। अपना शरीर देवताओंकी शक्तिसे भरपूर भरा है, यह दैवि-शक्तिसे भरा है यह ऐसा जानना हरएकके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

अपने शरीरकी ओर देखिये। यहां अनेक देव शरीरकी सेवा कर रहे हैं। वायु श्वासोच्छ्वास चला रहा है, सूर्य नेत्र द्वारा सब विश्वका दर्शन करा रहा है, इस तरह अन्यान्य देव शरीरमें अन्यान्य कार्य कर रहे हैं। जिससे शरीर सुरक्षित होकर हमारे उपयोगमें आ रहा है।

मनुष्यका शरीर 'देवोंका मंदिर' है। जो देव विश्वमें है वे ही देव मानवके शरीरमें आकर रह रहे हैं। अतः अपने शरीरको पूयविष्ठामूत्रका गोला न मान कर, इस देहको देवमंदिर समझना चाहिये। और वास्तवमें यह शरीर देवोंका निवासस्थान है भी। अतः इसको वैसा मानना भी योग्य है।

'इंद्रिय' हमारे शरीरमें अनेक हैं। 'इंद्रिय' का अर्थ इन्द्र की शक्ति है। शरीरमें इन्द्र है और उस 'इन्द्र' की शक्तिसे इंद्रियोंमें सामर्थ्य आकर सब इंद्रिय सामर्थ्यवान् बने हैं। शरीरमें अनेक देव हैं; उनकी शक्तिसे यह शरीर सामर्थ्यवान् बना है।

प्रत्येक मनुष्य यह समझे कि मेरे शरीरमें ३३ देवताएं कार्य कर रहीं हैं। इस कारण मेरा शरीर कार्यक्षम दीख रहा है। इस शरीरको बलवान् बनाना भी एक अनुष्ठान है। शरीरसे योग्य व्यायाम करनेसे शरीर बलवान् बनता है। 'व्यायाम करना' इसका अर्थ शरीरमें स्थित देवोंको व्यायाम देना है। प्रत्येक इंद्रियके व्यायाम विभिन्न हैं। उनके करनेसे शरीर सुदृढ हो जाता है।

अपना शरीर देवताओंका मंदिर है ऐसा समझना और किस विभागमें कौनसा देवतांश रहता है यह जानना तथा उसका विश्वके देवतासे संबंध जानकर उसको अपने सामर्थ्यमें महाबलवान् करना एक बडा अनुष्ठान है। शरीरको बलवान् बनाना तथा दीर्घायु बनाना मनुष्यके विचारोंकी धारणापर अवलंबित है।

'न मरै' यह वैदिक मंत्र है (ऋ. ८।९३।५) मैं नहीं मरूंगा मैं दीर्घजीवी बनूंगा ये विचार सदा मनमें रखने चाहिये। इसका परिणाम दीर्घजीवन प्राप्त करनेमें होता है। सब क्षणभंगुर है, मैं नाशवन्त हूं ऐसे कुविचार अवैदिक विचार हैं। 'मैं जल्दी मरूंगा नहीं, मैं दीर्घजीवन धारण करूंगा' ये वैदिक विचार हैं जो मानवका कल्याण कर सकते हैं। इस कारण मनुष्य इन विचारोंसे अपने मनको प्रफुल्लित करके रखे जिससे उनका कल्याण हो।

× × ×

वेदके विषयमें पण्डितजीके प्रयत्नोंकी, वेदवाङ्मयके प्रचारमें उनकी साहसी वृत्तिकी उपमा कहीं भी मिल नहीं सकती। स्वाध्यायमण्डल एक सातवलेकरसंस्कृत-विश्वविद्यालय ही है।

—श्री जगद्गुरु स्वामी योगेश्वरानन्दतीर्थ

× × ×

पण्डितजी वास्तवमें वैदिकऋषि हैं। दैन्य और निराशा ये शब्द ही उन्हें ज्ञात नहीं। लोगोंका शाश्वत कल्याण ही उनका एक आदर्श है। ऐसे तपस्वी मनुष्य जबतक भारतनिर्माणके कार्यमें तत्पर हैं, तबतक हमें निराश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इस आधुनिक वैदिकऋषिको हमारे अनन्त प्रणाम हों।

—श्री सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव



श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरो जयतु

(लेखक— श्री वि. के. छत्रे, कल्याण)

▲

श्रीशाय कर्माणि समर्प्य यस्तत्
पादौ स्मरन् सारमहो ! श्रुतीनाम् ।
ददौ जनेभ्यः सुगमं विधाय
दामोदरस्यात्मज एष धन्यः ॥ १ ॥

जिन्होंने परमेश्वरके चरणोंका स्मरण करते हुए अपने सारे कामोंको भगवान्को समर्पित करके वेदोंके सारको सुगम बनाकर मनुष्यके लिए दिया, वे श्री दामोदरके ये सुपुत्र धन्य हैं ॥ १ ॥

मोहं विहायानुचितां नरेण
दयां च काले भयदो विधेयः ।
रणोऽपि गीतामिति नव्यदीप्त्या
साकं प्रमाणैः व्यवृणोत् स धीमान् ॥ २ ॥

मोह और अनुचित दयाको छोडकर मनुष्यको समय पर भयदायक युद्ध भी करना चाहिए, (इस दृष्टिकोणसे) नवीन दीप्तिसे और प्रमाणोंके साथ इन बुद्धिमान्ने गीताकी व्याख्या की ॥२॥

तप्त्वा तपो ज्ञानसमर्पणाख्यं
वयोऽश्नुते यः शतसन्निधौ च ।
लेशेन गर्वेण न योऽवलिप्तः
कस्यर्षिरेषोऽभिमतस्तु न स्यात् ॥ ३ ॥

ज्ञानसमर्पणरूपी तपमें तपकर जो सौ वर्षके नजदीक आगए हैं। (उस पर भी) जो किंचित् भी अभिमानसे लिप्त नहीं हैं, ऐसे ये ऋषि किसके सम्मानके पात्र न हों ? ॥ ३ ॥

रोचिष्णुमालोक्य विशेषमायुः
जनप्रबोधाय मुदार्प्यमाणम् ।
य आदृतः शासन-लोकसंघैः
तुषा स जीयात् सुचिरं श्रुतिज्ञः ॥ ४ ॥

मनुष्योंको ज्ञानसे युक्त करनेके लिए खुशीसे अर्पित विशेष तेजस्वी आयुको देखकर जो शासन-संघ (सरकार) से सम्मानित हुए, वे वेद-विद्वान्-वेदमूर्ति प्रसन्नतापूर्वक बहुत समयतक जीयें ॥ ४ ॥

● ● ●

नारदस्मृति : एक अनुशीलन*

(लेखक— महामहोपाध्याय पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

नर शब्दका अर्थ है— 'नेता या नेतृत्व करनेवाला।' और नरोंके समुदायका नाम 'नार' है। इस नेतृत्व करनेवाले मानव-समुदायको जो शाश्वत धर्मका उपदेश देता है, वह नार-द कहलाता है। यह तो हुआ नारदका सामान्य अर्थ। पर, जिसकी स्मृतिका अनुशीलन हम यहाँ करना चाहते हैं, उस नारदस्मृतिका कर्ता नारद ऋषि भारतमें तथा विशेष कर पुराणोंमें सुप्रसिद्ध है।

इस नारदस्मृतिमें मानव-समाजकी व्यवस्था कैसी हो, उस समाजकी आर्थिक व्यवस्था कैसे सुदृढ बनाई जाय और इन दोनों व्यवस्थाओंको उत्तमतासे चलानेवाली राज्यव्यवस्था किस तरह की जाय, इन सब विषयोंकी बडी उत्तम विवेचना की गई है।

राज्यव्यवस्था

जबतक जनता अपना सारा व्यवहार सत्यनियमोंके अनुसार करती रहती है, तबतक शासकोंकी कोई आवश्यकता नहीं होती। पर जिस समय प्रजाओंमें अधार्मिकता बढ जाती है, उस समय राजाकी स्थापना आवश्यक हो जाती है। नारदस्मृतिके अध्ययनसे पता चलता है कि उसी प्रकार प्राचीनकालमें भी प्रजाओंमें अधार्मिकता बढने पर राजा बना और राज्यशासनकी व्यवस्था शुरू हुई। राजाके कर्तव्योंके विषयमें स्मृतिकारका कथन है—

सतां अनुग्रहो नित्यं असतां निग्रहः तथा।
एष धर्मः स्मृतो राज्ञां अर्थश्चापीडयन् प्रजाः॥

अर्थात् सज्जनोंका पालन, दुष्टोंको दण्ड देकर उनका निग्रह करना तथा प्रजाओंको पीडा न देते हुए धन प्राप्त करना ये राजाओंके कर्तव्य हैं।

श्रुतिस्मृति-विरुद्ध आचरण तथा प्रजाकी अवनति करनेवाला कुव्यवहार राजा स्वयं कभी न करे और जो दूसरा कोई करे, तो उसे राजा दण्ड दे।

सहस्रदृक् राजा

राजा अपने राज्यमें तथा बाहर अपने विश्वस्त गुप्तचरोंसे राज्यव्यवस्थाका हर समाचार लेता रहे और राज्यमें किसी तरहकी अव्यवस्था न होने दे। इसलिए, नारदस्मृतिमें राजाको 'सहस्रदृक्' कहा गया है। अर्थात्, वह हजारों नेत्रोंसे युक्त होता है। यह गुप्तचरोंकी दृष्टि ही राजाके सहस्रों नेत्र हैं। गुप्तचरोंकी उत्तम व्यवस्था रखना उत्तम राज्यशासनकी पहली सीढी है।

राजाके पाँच रूप

स्मृतिकारने राजाके पाँच रूप बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—

पञ्चरूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः।
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य धनदस्य च॥

अर्थात्, अत्यन्त सामर्थ्यशाली राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और कुबेर इन पाँच देवताओंके रूपोंको धारण करते हैं।

१ क्रुद्ध होने पर राजा अग्निका रूप धारण करता है।

२. शत्रु पर आक्रमण करनेके समय वह इन्द्रका रूप धारण करता है;

३. प्रसन्न होने पर वह आनन्ददायक चन्द्र बनता है;

४. दुष्टोंको दण्ड देनेके समय वह यमका रूप धारण करता है; और

५. दान देनेके समय राजा कुबेर बनता है।

---

* बडौदा-आकाशवाणीसे प्रसारित म० म० पं० श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकरकी एक गुजरातीवार्ताका हिन्दी-रूपान्तर। रूपान्तरकार- श्री श्रुतिशील शर्मा, 'अमृतलता' -सम्पादक।

ब्राह्मणोंकी सम्मति

राजा सबसे समान व्यवहार करे तथा ब्राह्मणोंकी सलाहसे अपना राज्यशासन चलाये।

ब्राह्मणानुपसेवेत नित्यं राजा समाहितः।
संयुक्तं ब्राह्मणैः क्षत्रं मूलं लोकाभिरक्षणे॥

अर्थात्, राजा सदा समवृत्तिसे रहकर ब्राह्मणोंकी सलाह लेकर अपने राज्यशासनका कार्य करता रहे; क्योंकि ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे चलनेवाला राजा ही राष्ट्रका संरक्षण कर सकता है।

राजा न्यायी हो

राज्यव्यवस्था उत्तमतासे चलानेके लिए राजाका न्यायी होना अत्यावश्यक है। क्योंकि, राज्यकी सारी व्यवस्था धर्ममार्गमें रहनेसे ही सबके लिए आनन्द देनेवाली हो सकती है। अतः, स्मृतिकारका कथन है—

धर्मश्चार्थश्च कीर्तिश्च लोकपक्तिरुपग्रहः।
प्रजाभ्यो बहुमानं च स्वर्गस्थानं च शाश्वतम्॥

अर्थात्, योग्य रीतिसे न्याय करनेवाला राजा धर्म, अर्थ, कीर्ति, लोगोंका आदरभाव, प्रजाकी सहायता, प्रजाजनोंसे सम्मान और शाश्वत स्वर्गस्थान प्राप्त करता है।

धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र

धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्रमें विरोध दीखने पर राजा अर्थशास्त्रको छोडकर धर्मशास्त्रके अनुसार ही कार्य करे। राजा धर्मशास्त्रमें कुशल, सत्यवादी, कुलीन और शत्रु तथा मित्रसे सम व्यवहार करनेवालोंको अपनी सभाका सदस्य बनाये। यदि सभाका कोई सदस्य दूषित व्यवहार करे, अथवा रागद्वेषसे, अज्ञानसे या लाभसे उल्टा व्यवहार करे, तो राजा उसे दण्ड दे।

राज्यकी अर्थव्यवस्था

नारदस्मृतिमें धन-संग्रहके अनेक मार्ग बताये हैं। उनमें कर, जुरमाना आदि मार्ग भी बताये हैं। राजा प्रजासे योग्य कर ले; पर उस करसे प्राप्त धनको राजा प्रजाके हितमें ही खर्च कर दे। राजा कभी अयोग्य रीतिसे धन प्राप्त न करे। अतः स्मृतिकारका आदेश है—

धनमूलाः क्रियाः सर्वाः यत्नः तत्साधने मतः।
वर्द्धनं रक्षणं भोग इति तस्य विधिः क्रमात्॥

अर्थात्, सारे कार्य धनसे होते हैं, अतः धनको कमानेका यत्न करना चाहिए। राजा धनको प्राप्त करे, धनको बढावे, धनका संरक्षण करे और उस धनका उपभोग भी करे।

तीन प्रकारका धन

शुक्ल, शबल और कृष्ण रूपसे धन तीन प्रकारका होता है। १. शूरता, वीरता, तप और यज्ञादिसे प्राप्त धन शुक्ल होता है। २. ब्याज, खेती, व्यापार और शिल्पादिसे कमाया धन शबल कहा जाता है। ३. जूआ, अत्याचार, डाका आदि द्वारा कमाया धन कृष्ण कहा जाता है। राजा 'कृष्ण' धन कभी न ले। चारों वर्णोंको धन कमानेका समान अधिकार है।

राजाका कर्तव्य है कि वह राज्यकी अर्थव्यवस्थाको उत्तम बनाये रखे। यदि कोई किसीसे ऋण लेकर वापस न करे, तो राजा उस ऋणको वापस दिलाये; पर उस धनका बीस प्रतिशत भाग राष्ट्रके खजानेमें जमा कर ले।

राज्यमें चोरी न होने पाये। यदि किसीके यहां चोरी हो जाय और राजा चोरको न पकड सके, तो राजा राज्यके खजानेसे उस धनके स्वामीको उतना धन दिलवाये।

दण्डव्यवस्था

राष्ट्रमें शान्तिकी व्यवस्थाके लिए राजा अपराधियोंको दण्ड देनेकी व्यवस्था भी करे। दूसरोंके फल, खेतके साधन आदि चुरानेवाले पर सौ मुद्राओंका जुरमाना हो। पशु, अन्न आदिकी चोरी जो करे, उससे राजा पांच सौ मुद्राओंका जुरमाना वसूल करे। जो स्त्रीका अपहरण करे, उसपर बलात्कार करे अथवा दूसरोंकी हत्या करे, उसे राजा मृत्युदण्ड दे। जो जिस अंगसे महान् अपराध करे, उस अपराधीका वह अंग कटवा दिया जाय। माता, बहन, सास, लडकी, पुत्रवधू, गुरुपत्नी, रानी और संन्यासिनीके साथ यदि कोई अवैध सम्बन्ध करे, तो उसे राजा नपुंसक करा दे।

समाजव्यवस्था

उस समय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमोंमें बँटा हुआ था। ब्राह्मणका कार्य ज्ञानका प्रचार करना, यज्ञ करना और धर्मका शिक्षण देना था। क्षत्रियका कार्य राष्ट्ररक्षाके लिए युद्ध करना, सज्जनोंका पालन

और दुष्टोंका नाश करना था। वैश्योंका कार्य गोरक्षा, कृषि तथा व्यापार करना था और शूद्रोंका कार्य उपर्युक्त तीन वर्णोंकी सेवा करना था।

ब्रह्मचारीका कर्तव्य था कि वह भिक्षावृत्तिसे जीविका कमाये, नीचे सोये, अपने आचार्यकी सेवा करे और शिक्षा समाप्त होने पर अपने गुरुको दक्षिणा देकर तथा उसकी आज्ञा लेकर अपने घर जाय। आचार्यका भी यह कर्तव्य है कि वह शिष्यको अपने घरमें भोजन और कपडा देकर उसे उत्तम शिक्षा दे। कहा है—

आचार्यः शिक्षयेदेनं स्वगृहात् दत्तभोजनम्।
न चान्यत् कारयेत्कर्म पुत्रवच्चैनमाचरेत्॥

अर्थात्, आचार्य शिष्यको अपने घरसे भोजन देकर शिक्षा दे। उस शिष्यसे अध्ययनके अलावा दूसरा कुछ काम न कराये तथा उसके साथ अपने पुत्रके समान व्यवहार करे।

गृहस्थोंका कर्तव्य था कि वे सबका उत्तम रीतिसे पालन करें। वानप्रस्थी और संन्यासियोंका कार्य देशमें घूम-घूमकर सर्वत्र धर्म-प्रचार करना था। इस प्रकार, नारदस्मृतिमें राज्यव्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाजव्यवस्थाकी उत्तम रूपरेखा प्रस्तुतकी गई है। 卐 卐 卐

प्रातःस्मरणीयस्य सुगृहीतनामधेयस्य वेदाचार्यस्य माननीयस्य श्रीमतः **श्रीपाद**-
महोदयस्य **दामोदर**सूनोः **सातवळेकर**कुलजस्य अष्टनवतितमं संवत्सरं स्पृशतः

शु भा भि न न्द न म्

(कविः— श्री **मुनिमेधाव्रताचार्यः** आर्यकवीन्द्रः)

वेदानामनुशीलनैरविरतं व्याख्याशतं यो व्यधाद्
गम्भीरार्थमनेकगूढविषयं संख्यावतामग्रणीः ।
श्रीमान् सातवळेकरान्वयविधुर्दामोदरस्यात्मजः
श्रीपादश्शरदां शतादपि परं स्वस्थस्स जीव्यात्सुखम् ॥ १ ॥

अनुशीलन करके जिन्होंने गंभीर अर्थवाले और अनेक गूढ विषयोंवाले वेदोंकी अनेक व्याख्यायें की, जो विद्वानोंमें अग्रगण्य है, ऐसे सातवलेकर वंशके चन्द्रमा, श्री दामोदरके सुपुत्र श्रीपाद स्वस्थ और सुखी होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीवें ॥ १ ॥

साहित्यं श्रुतिधर्मसंगतमलं साहित्यसेवारतो
गीर्वाण्यार्यगिरोस्स्वमातृगिरि यः प्राकाशयन्मासिकैः ।
आषष्ट्यब्दत एव मंगलकरैर्लेखैस्स लेखेश्वरो
जीव्याल्लोकहिताय वर्षशतकादूर्ध्वं यशोवर्द्धनः ॥ २ ॥

गीर्वाणी (संस्कृत) आर्यभाषा (हिन्दी) और मातृभाषा (मराठी) इन मासिकपत्रोंको प्रकाशित करके तथा अपने मंगलकारी लेखोंके द्वारा जो ६० वर्षसे वैदिकसाहित्यकी सेवामें संलग्न हैं, वे यशस्वी लेखक संसारके हितके लिए सौ वर्षसे भी अधिक जीवें ॥ २ ॥

दिक्पालाङ्कमिताब्दमायुरमलं संधारयन् धर्मधीः
वेदाचार्यपदेनलङ्कृतनरस्सम्मानितो राष्ट्रपैः ।
गीतालङ्करणो नृवन्द्यचरणः श्रीपादनामा बुधः
पुण्यार्यावनिभूषणो विजयतां राष्ट्रोदयेच्छुर्भृशम् ॥ ३ ॥

दिक्पाल (८) अंक (९) अर्थात् ९८ वर्षकी आयुको धारण करनेवाले, धर्मयुक्त बुद्धि-वाले, वेदाचार्यकी उपाधिसे अलंकृत, राष्ट्रशासकों द्वारा सम्मानित, गीतारूपी अलंकारसे शोभित, मनुष्यों द्वारा वन्दनीय, पुण्यशाली आर्यावर्तके भूषण, राष्ट्रके उदयकी इच्छा करनेवाले श्रीपाद नामवाले विद्वान् विजयी हों ॥ ३ ॥

स्वस्थो युवेव निजकार्यरतः प्रसन्नः कार्यालये स नियमेन करोति कार्यम् ।
योगासनानि मनसाऽसुनिरोधपूर्वं प्रातस्सदा वितनुते मुनिवन्मनीषी ॥ ४ ॥

स्वस्थ रहकर नवयुवकके समान वे अपने कार्यमें व्यस्त रहते हैं, हमेशा प्रसन्न रहते हैं। कार्यालयमें वे नियमसे कार्य करते हैं । प्राणायामपूर्वक मनसे योगासनोंको वे बुद्धिमान् मुनिके समान हमेशा प्रातःकाल करते हैं ॥ ४ ॥

आदर्श एष पुरुषः पुरुषार्थशाली श्रद्धास्पदो मम मतो मितसात्त्विकाशः ।
मेधाव्रतस्य शिशुकालत एव वन्द्यस्सज्जीवनस्य कलयामलयोचितस्य ॥ ५ ॥

वे पुरुषार्थशाली पुरुष आदर्श भूत हैं, तथा सात्त्विक वृत्तिवाले वे मेरे लिए श्रद्धाके पात्र हैं, मुझ मेधाव्रतके बचपनसे ही वे वन्द्य हैं ॥ ५ ॥

• • •

ब्रह्मर्षिजीका जीवनदर्शन

[लेखक— श्री भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्त-वाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (गुजरात)]

सन् १९३८ की बात है मेरी अवस्था उस समय २२ वर्ष की थी, कांग्रेसके प्रति मेरी बडी श्रद्धा थी। गुजरातप्रान्तके हरिपुरा नामक ग्राममें श्री बाबू सुभाषचन्द्रबोसके सभापतित्वमें कांग्रेसका ५१ वां बृहद्वार्षिक अधिवेशन बडे ही धूमधामसे होनेवाला था, मैं भी काशी (बनारस) से पैदलयात्रा करते हुये हरिपुरा कांग्रेस देखनेके लिए चल पडा। काशीसे मिर्जापुर, रींवा, सतना, मइहर, जबलपुर, इटारसी, हरदा, खण्डवा, भूसावल, बुरहानपुर; अमलनेर, नन्दुरबार, डोंडाइचा, बारडोली, नवसारी, डांडी, करडी, मढवार, धारसना आदि अनेक नगरों और ग्रामोंमेंसे होते हुए करीब ११ मास पश्चात् हरिपुरा कांग्रेसमें पहुँचा।

ताप्ती नदीके किनारे विट्ठलनगर बसाया गया था। ताप्ती-नदी पर एक अस्थाई पुल बाँधा गया था। पुलको पार करके दूसरे किनारे पर आर्य नगरका निर्माण हुआ था। आर्यसमाजके बडे बडे नेता जो कांग्रेसी भी थे आर्यसमाजके पण्डालमें वैदिकधर्म पर व्याख्यान देने आया करते थे और बहुतसे लोग वहाँ ठहरे हुये भी थे। मैं भी आर्यनगरमें ही ठहरा आर्यपंडालमें प्रातः और सायं सन्ध्या यज्ञादि करानेकी व्यवस्था मेरे सुपुर्द की गई, मैंने उसको सहर्ष स्वीकार किया। रात्रीमें कांग्रेसका बृहद् अधिवेशन देखने और कांग्रेसके बडे बडे नेताओंके भाषण सुनने चला जाया करता था।

कांग्रेसके खुले अधिवेशनके प्रथम दिन प्रातःकाल यज्ञके पश्चात् ९ बजेसे लेकर १० बजे तक श्री पूज्यपाद ब्रह्मर्षिजीका वैदिकधर्म पर आर्यनगरके पण्डालमें एक घन्टातक बडा ही ओजस्वी भाषण हुआ, आर्यमुसाफिर कुँवर सुखलालजी भी वहाँ पधारे थे उनका भी अत्यन्त प्रभावशाली भजनोपदेश हुआ। अधिवेशनका वह पहिला दिन था, श्रीब्रह्मर्षिजीके भाषणका मेरे जीवन पर बडा ही प्रभाव पडा। इनका स्वास्थ्य उस समय बहुत ही अच्छा था। शरीर पर खादीके सफेद स्वच्छ वस्त्र कुर्ता और धोती पहने हुये थे सिर पर खादीकी ही सफेद गान्धी टोपी थी इनका यह प्रथम दर्शन और भाषण मेरे लिये अमृत सिद्ध हुआ। और विचार करने लगा कि वह दिन मेरे लिये कब आयेगा जब मैं इनके आश्रममें रहकर इनके सान्निध्यमें वेदोंका बृहद्ज्ञान प्राप्त करूँगा।

हरिपुरा अधिवेशनके समाप्त होने पर मैं काशी चला गया, काशीसे मुझे लाहौर जाना पडा। लाहौरमें जाकर 'आर्य उपदेशक महाविद्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर' में प्रविष्ट कर लिया गया। अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् आर्योपदेशकके नाते वैदिकधर्म प्रचारमें लग गया। वैदिकधर्म प्रचार और देशकार्य करते हुये तीनवार जेलयात्रा भी करनी पडी।

अनेक आन्दोलनोंमें भाग लेते और विभिन्न क्षेत्रोंमें कार्य करते हुये अनेक वर्ष बीत गये, अन्तमें १९६१ ई. के जनवरी मासमें मैं अपने आश्रम दयानन्दमठ दीनानगरमें था, एक दिन 'मासिक वैदिकधर्म-पत्रिका' की एक प्रति मेरे हाथ लग गई मैं उसे लेकर पढने लगा। उसमें भी स्वामी सत्यानन्दजी महाराज और ब्रह्मर्षिजीका चित्र भी दिया हुआ था और दोनों महानुभावोंके दीर्घजीवन प्राप्त करनेके सम्बन्धमें भी कुछ लिखा था। इसको पढकर मेरे अन्दर एक दैवी विचार उत्पन्न हुआ, और सोचा 'श्रीब्रह्मर्षिजीकी आयु ९४ वर्षकी होगई है, कई वर्षोंसे ही मेरी इच्छा इन आश्रममें जानेकी हो रही है लेकिन इच्छा रहते हुये भी अवसर उपलब्ध नहीं हुआ, अगर यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर अवसर मिले अथवा न मिले यह नहीं कह सकता। अतः वेदोंके इतने बडे प्रकाण्ड विद्वान्के पवित्र चरणोंमें जाकर वेदोंका विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये नहीं तो फिर पछताना ही शेष रह जावेगा, अवसर निकल जानेपर फिर कुछ नहीं बनेगा।'

अन्तर्भावनासे प्रेरित होकर मैंने अपने आश्रम मठ दीनानगरमें आये हुये पूज्य स्वामी सोमानन्दजी महाराज (रिवाडी), और अपने पूज्यपाद आचार्य स्वामी सर्वानन्दजी महाराज अध्यक्ष दयानन्दमठ दीनानगर, इन दोनों

महानुभावोंसे विचार विनिमय के पश्चात् आज्ञा लेकर श्री ब्रह्मर्षिजीकी पवित्र सेवामें कई पृष्ठोंका एक बृहद् पत्र लिख कर भेजा और उसमें निवेदन किया कि 'आप मुझको अपने पास बुलानेकी कृपा करें।' जैसाकी मैंने पवित्र हृदयसे अन्तर्भावनासे प्रेरित होकर पत्र लिखा था, उसीके ही अनुरूप ६ पृष्ठोंका एक बहुत बडा पत्र ब्रह्मर्षिजीके स्वयं हाथका लिखा हुआ मेरे पास गया। इतना बडा पत्र शायद ही किसीको अपने पास आश्रममें रहनेके लिये लिखे हों। वह पत्र बहुत ही महत्वपूर्ण है जो समय पर प्रकाशित भी किया जासकता है मेरे पास सुरक्षित है। उसको पढकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और अपने पूज्य आचार्य और पूज्य स्वामी सोमानन्दजी महाराजसे आज्ञा लेकर स्वाध्याय मण्डल पारडीके लिये चल पडा। रेलगाडीसे यात्राकर देहली, जयपुर, अहमदाबाद होते हुये २९ जनवरी १९६१ ई. को प्रातः ८ बजे रविवारके दिन ब्रह्मर्षिजीके पवित्र चरणोंमें आ उपस्थित हुआ और कई वर्षोंसे लगी हुई इच्छा पूर्ण हुई।

३० जनवरी १९६१ ई० से बाकायदे नियमित रूपसे कार्य परे लग गया तबसे आश्रममें रहकर इनके बताये हुये कार्यको करता हूँ। यहाँ ब्रह्मर्षिजी पवित्र चरणोंमें रहकर मुझे वेदोंका सूक्ष्मताके साथ विशेष अध्ययन करने, मनन, चिन्तन, लेखन और जीवन साधनाके करनेका अच्छा अवसर मिला है। ३½ वर्षोंमें अग्नि देवताके २४८३ मन्त्रोंकी हिन्दी वेदानुवाद कार्य पूर्ण किया है, 'वैदिक धर्म पत्रिका मासिक' में तथा 'रामतीर्थ मासिक पत्रिका बम्बई' में विभिन्न विषयों पर अनेक लेख भी लिखा। कई लेखों पर पारितोषिक भी मिला यह सब ब्रह्मर्षिजीके ही कृपाका फल है।

जबसे मैं यहाँ आया हूँ और ब्रह्मर्षिजीके छत्रछायामें रहकर कार्य कर रहा हूँ तबसे लेकर निरन्तर प्रगतिकी ओर बढता ही जा रहा हूँ। इनके द्वारा ही वास्तविक जीवनकला का ज्ञान मैंने प्राप्त किया है। वाणीका संयम तथा प्रत्येक इन्द्रियका संयम इनके प्रत्यक्ष जीवनसे देखकर अपने निजी जीवनमें घटानेका प्रयत्न किया है।

श्री ब्रह्मर्षिजी यहाँ पारडी आनन्दाश्रममें योगीराज शंकर-के रूपके विराजमान हैं। इनके अनेक सहयोगी कार्यकर्ता अपने कार्यमें दत्तचित्त होकर लगे हुये हैं इनके सिरसे वेद ज्ञान गंगाकी पवित्र धारा प्रवाहित हो रही है। जिसमें स्नान कर मानव समाज तृप्त हो रहा है। इनका परिवार अत्यधिक विस्तृत है। बडे बडे योगी, महर्षि, राजा महाराजा श्रेष्ठ विद्वान्, उच्च राज्याधिकारी तथा अनेक प्रसिद्ध कलाकार समय समय पर इनके दर्शनार्थ आया करते हैं, और इनके दर्शन कर तथा उत्तम ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर आत्म-शान्तिके साथ प्रसन्नवदन होकर चले जाते हैं।

ब्रह्मर्षिजीके अन्दर अनेक गुणोंका समावेश है यह स्वयं कष्ट सहन करके भी लोगोंका कल्याण करते है। ३½ वर्षोंमें मैंने इनको कभी किसीपर एकबार भी नाराज होते अथवा क्रोध करते हुये नहीं देखा। यह ब्रह्मज्ञानमें निमग्न रहते हुये अहर्निश शुभ कर्म ही करते रहते हैं। ९८ वर्षकी अवस्था होने पर भी, वेदका ही चिन्तन, मनन, लेखन प्रवचन इनका प्रधानकार्य है। मैंने इनको कभी भी किसी भी परिस्थितिमें निराश और दुःखी होते नहीं देखा। इनके दर्शनमात्रसे ही महती स्फूर्ति और उत्साह प्राप्त होता है। इनका मुखमण्डल सदा सर्वदा गुलाबकी तरह खिला रहता है और सूर्यकी तरह तेजसे दमकता रहता है। यह इतना बडा कार्य करते हुये भी और इतने बडे परिवारका बोझ वहन करते हुये भी विदेह महाराजा जनककी तरह संसारसे निर्लिप्त होकर जलमें कमलकी भाँति रह रहे है। इनका पवित्र जीवन सबके लिये अनुकरणीय है।

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें प्रातःकाल उठकर शौच, स्नान, सन्ध्या वन्दनसे निवृत्त होकर शुद्ध गायके दुग्धका सेवन करते हैं, इनका भोजन सात्विक, पवित्र निरामिष होता है, भोजनके समय घरके दूसरे लोग भी एक साथ बैठकर वेद-मन्त्रोंका पाठ करके पुनः एक साथ भोजन करते हैं यह इनकी परम्परा है, सब काम ठीक समय पर करते हैं, चाय, कहवा तथा किसी अन्य नशीले अभक्ष्य पदार्थोंका कभी भी सेवन नहीं करते हैं। इनका जीवन नियमित और अत्यन्त संयमी है, क्रोध, मोह, ईर्ष्या और द्वेषादिसे बिलकुल रहित हैं, हर अवस्थामें प्रसन्न रहते हैं, ईश्वरपर अटल विश्वास है, सब काम ईश्वरीय काम समझ पर पवित्र भावना एवं श्रद्धासे करते हैं। आसन, प्राणायाम आदि योगाङ्गोंका अभ्यास बराबर चल रहा है और समाधिमें निमग्न होकर ब्रह्मके दर्शन करते हैं इनके दीर्घजीवी होनेका यही मूल कारण है।

आज इनके ९८ वें वर्षगाँठ पर अपनी श्रद्धाञ्जलि इस लेखके रूपमें लिखकर मैं समर्पण करता हूँ और परमपिता परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभो! ऐसे पवित्र गुणोंवाले ब्रह्मर्षि और अनेक वर्षोंतक स्वस्थ, प्रसन्न रहते हुये मानव-समाजकी सेवा करते रहें।

पूज्यचरणस्य पण्डितप्रकाण्डस्य
श्रीमतः श्रीपाद-दामोदर-सातवलेकरमहोदयस्य सेवायाम्



अ भि न न्द न म्

कविवरः— प्रा. जनमेजयः, विद्यालंकारः, एम., ए., शास्त्री

★

[१]

योगे पतञ्जलिसमोऽसि जितेन्द्रियोऽसि, श्रीकृष्णतामुपगतोऽसि च कर्मयोगे।
द्वैपायनस्त्वमसि वैदिकतत्ववेत्ता, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[२]

मुख्योऽसि पौरुषवतां विदुषां वरेण्यो, वेदोदयाय कृतवानसि भूरियत्नम्।
सम्मानपात्रमसि सर्वजनस्य भूयो, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[३]

धन्या मही च खलु दक्षिणभारतस्य, या त्वामसूत जगतीतलरत्नभूतम्।
धन्यौ तथैव पितरौ तव जन्मदौ यौ, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[४]

अस्मादृशाश्च बहवः खलु धन्यधन्याः, ये शिष्यतामुपगतास्तव पुत्रतुल्याः।
मार्गप्रदर्शकतमोऽसि सदैव येषां, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[५]

श्रीपाद इत्यभिहितोऽसि निजेन नाम्ना, दामोदरस्त्वमसि सातवलेकराख्यः।
देशस्य रत्नमसि भूषणमार्यजातेः, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[६]

पुण्यं यशः सुखसमृद्धिमनामयत्वं, नित्यं लभस्व कृपया जगदीश्वरस्य।
जीव्याद् भवांश्च शतकद्वयवर्षसंघं, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

[अर्थके लिए देखिए पृष्ठ ३२२]

वेदमूर्ति सातवलेकर

(लेखक— श्री राजेन्द्र विद्याव्रतशास्त्री)



" पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके कामसे कौन परिचित नहीं है ? स्वाध्याय-मण्डल द्वारा इन्होंने संस्कृतभाषा, वेदविद्या और भारतीयसंस्कृतिके प्रचारके लिए अनन्य निष्ठासे जो परिश्रम किया है, वह आजके समय में अद्वितीय है । "

उपरोक्त शब्दोंमें काका कालेलकरने पण्डित सातवलेकरजी-की प्रशंसा की है। १९५९ में भारतके राष्ट्रपतिने भारतके श्रेष्ठ विद्वान्के रूपमें इन्हें सम्मान पत्र दिया था।

पण्डितजीने अपनी संस्था स्वाध्यायमण्डल द्वारा वेदोंके विषयमें, उपनिषदोंके विषयमें, वाल्मीकीय रामायण और महाभारतके विषयमें अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। उसके अलावा अथर्ववेद और सामवेदका सुबोध भाष्य, गौके विषयमें वेदमंत्रके संग्रहके रूपमें गौ ज्ञान कोष, श्रीमद् भगवद्गीताके ऊपर अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन युक्त " पुरुषार्थबोधिनी " टीका तथा अन्यान्य विषयोंके भी अनेकों ग्रंथ प्रकाशित किए है। ये ग्रंथ हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषाओंमें प्राप्य हैं। भगवद्गीताकी बृहत्काय पुरुषार्थबोधिनी टीकाका अंग्रेजी अनुवाद भी प्राप्य है। इसके अलावा अन्य अंग्रेजी प्रकाशन भी हैं। वैदिक धर्म (हिन्दी मासिक), वेदसन्देश (गुजराती मासिक), पुरुषार्थ (मराठी मासिक), अमृतलता (संस्कृत त्रैमासिक) क्रमशः हिंदीभाषी, गुजरातीभाषी व मराठीभाषी लोगोंमें वैदिक संस्कृति और संस्कृत प्रचारका प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। पण्डितजीके तत्वावधानमें संचालित संस्कृत भाषा प्रचार समिति, स्वयं शिक्षक पद्धतिसे संस्कृत शिक्षण का काम गत १५–१६ वर्षोंसे कर रही है। इस समितिके संस्कृत प्रचारके केन्द्र भारतके सभी राज्यों और अफ्रीकामें भी हैं। आज १३०० के लगभग केन्द्र हैं, जिनमें लगभग ४५ हजार विद्यार्थी प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। अफ्रीकाके जोहानीसबर्ग और स्प्रिंग्समें भी केन्द्र हैं। इन केन्द्रोंके केन्द्र व्यवस्थापकोंमें कई मुस्लिमभाई भी हैं। इन परीक्षाओंके अलावा वेद, गीता, उपनिषद् आदिकी परीक्षाओंकी भी व्यवस्था है। इनके लिएं संस्कृत पाठमाला (२४ भाग), वेद-का स्वयं शिक्षक, वेदपरिचय (३ भाग) इत्यादि ग्रंथ भी प्रकाशित किये हैं।

पण्डितजी योग महाविद्यालय और वेद महाविद्यालय भी चलाते है। जिसमें विद्यार्थिओंको यौगिक व्यायाम पद्धति तथा वेदका शिक्षण बिना मूल्य दिया जाता है।

ज्ञानगंगाके प्रवाहको बहते हुए रखनेके लिए श्री पण्डित-जीके इस जीवन कार्यके पीछे एक बडा इतिहास है। सावंत-वाडीके नजदीक महाराष्ट्रके एक छोटेसे गांव "कोलगांव" में श्री पण्डितजीका जन्म हुआ। पण्डितजी सावंतवाडीमें २२ वर्ष रहे और प्राथमिक शिक्षा, चित्रकला शिक्षा और शास्त्रकी शिक्षा भी वहीं प्राप्त की।

उसके बाद विशाल कार्यक्षेत्रकी खोजमें १८८९ में बम्बई आकर ये सर जे. जे स्कूल ऑफ आर्ट्समें पोर्ट्रेट पेंटिंगका अभ्यास करनेके लिए प्रविष्ट हो गए। तथा वहांसे अच्छे चित्रकार बनकर निकले। इन्होंने उसके बाद पेंटिंगके विभिन्न प्रदर्शनियोंमें बहुत सारे पदक और पुरस्कार भी प्राप्त किए, कई वर्षतक उसी स्कूलमें अध्यापकपद पर भी कार्य किया।

पण्डितजी १९०० में हैदराबाद गए और वहां अपना स्टूडियो भी खोला। निजाम और दूसरे नवाबोंने इनकी कलाकी अच्छी कदर की और इन्हें अच्छा काम दिया। चित्र-

कलाके साथ-साथ पण्डितजीका वेदका परिशीलन भी जारी रहा और इन्होंने हैदराबादमें और उसके आसपास 'वैदिक-सभ्यता' पर व्याख्यान भी दिए। इन व्याख्यानोंसे पण्डितजी वेदविद्याके विद्वान्‌के रूपमें संसारमें विख्यात हुए। भारतकी प्रख्यात कवियित्री 'भारत कोकिला' श्रीमती सरोजिनी नायडू व उनके पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय दोनों ही पण्डितजी-की इस व्याख्यान प्रवृत्तिमें खूब रस लेते थे। डॉ. अघोरनाथ इनके कई व्याख्यानोंमें अध्यक्ष भी बने। इनके व्याख्यानोंसे हैदराबादका ब्रिटिश रेजिडेण्ट भडक उठा और उसे इनके व्याख्यानोंमें राष्ट्रीयताकी ज्वाला भडकती दिखाई दी। इस-लिए उसने निजामसे इन्हें 'देश निकाला' का दण्ड देनेके लिए कहा है। निजामके हृदयमें इनके प्रति बडा आदर था, इसलिए उसने अपने सचिवसे इन्हें कहलवाया कि ये अपनी व्याख्यान प्रवृत्ति बन्द कर दें। पर अपनी आत्माके विरुद्ध एक आत्मवान् कैसे जा सकता है? अतः इनकी प्रवृत्ति चालू ही रही। अन्तमें ब्रिटिश रेजिडेण्टके निरन्तर दबाव के कारण मजबूरन इन्हें निजामने देशसे निर्वासित किया।

पण्डितजीके पीछे ब्रिटिश सरकारका इस प्रकार हाथ धोकर पीछे पड जानेका एक कारण यह भी था कि हैदराबाद-में रहते हुए इनकी 'वैदिक राष्ट्रगीत' नामकी पुस्तक बम्बई तथा प्रयागसे क्रमशः मराठी और हिन्दीभाषामें एक साथ प्रकाशित हुई। भारतीय नागरिकोंमें राष्ट्रीयताकी भावना को उकसानेवाली किसी भी प्रवृत्तिको दबा देनेमें तत्पर ब्रिटिश सरकारने प्रकाशित होते ही इस पुस्तकको जब्त कर लिया। और इसकी प्रतियोंको जला दिया। इस पुस्तकमें पण्डितजीने अथर्ववेदके कई सूक्तोंका अनुवाद और उनकी व्याख्या की थी।

हैदराबादसे चलकर श्री पण्डितजी गुरुकुल कांगडीमें चित्रकला और वेदविद्याके शिक्षकके रूपमें कार्य करने लगे। इन्हें स्वामी श्रद्धानन्दजीका पूरा सहयोग मिला। वहां इन्होंने 'वैदिक प्रार्थनाका ओजस्वी सन्देश' शीर्षक एक लेख मराठीमें लिखा जो कोल्हापुरसे प्रकाशित होनेवाले 'विश्ववृत्त' नामक मासिकमें छपा।

इस लेखके प्रकाशित होते ही ब्रिटिश सरकारने बडौदाके महाराज श्री सयाजीराव गायकवाडको पण्डितजी पर केस करनेका आदेश दिया। पर महाराजने निडरतासे ब्रिटिश सरकारसे कह दिया कि वैदिकविद्याके प्रचारके लिए पण्डित-जी बहुत उपयोगी काम कर रहे हैं इसलिए पण्डितजीके उपर केस नहीं कर सकता।

इस दांवके असफल हो जाने पर ब्रिटिश सरकारने दूसरा दांव मारा और कोल्हापुरके महाराजा पर दबाव डाला। 'विश्ववृत्त' के सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक पर मुकदमा चला और उसमें एक अंग्रेजी न्यायाधीशने प्रत्येकको ३॥ वर्ष-की सख्त कैदकी सजा दी। उस समय पण्डितजी गुरुकुल कांगडीमें थे अतः उन्हें वहांसे गिरफ्तार करके हाथ पैरोंमें जंजीर डाल कर बिजनौर जेलमें बन्द कर दिया गया। एक महीनेके बाद मुकदमेके लिए इन्हें कोल्हापुर ले जाया गया। वैदिक प्रार्थनाके विषयमें लेख लिखनेके कारण इन्हें एक अपराधीके समान सशस्त्र पुलिसके पहरेमें ले जाया गया।

कोल्हापुरमें पण्डितजी १॥ वर्ष कैदमें रहे। उस समय थियोसॉफिकल सोसायटीकी तात्कालीन अध्यक्षा डॉ. एनी बेसेण्टने कोल्हापुर महाराजाके नाम एक पत्र लिखा कि पण्डितजीको अनावश्यक कष्ट न दिए जाएं। उसवक्त पण्डित जी थियोसोफिकल सोसायटीके अन्तरंग सदस्य थे। इस पत्रका अच्छा प्रभाव पडा।

अन्तमें एक भारतीय न्यायाधीशने इन्हें निर्दोष मुक्त कर दिया और साथ ही अंग्रेज न्यायाधीशकी आलोचना भी की। इस पर नाराज होकर सरकारने उस भारतीय न्याया-धीशको बर्खास्त कर दिया।

कोल्हापुरसे छूटकर पण्डितजी लाहौर गए और वहां करीब नौ वर्ष चित्रकारके रूपमें कार्य किया। काश्मीर, पटियाला, जयपुर और ग्वालियरके महाराजाओंने इनकी कलाको अच्छा संरक्षण दिया। इस समय भी चित्रकलाके साथ-साथ वैदिक-विद्याके विभिन्न विषयों पर व्याख्यान देने-की इनकी प्रिय प्रवृत्ति तो चालू रही ही। व्याख्यान देने वे मुलतान, रावलपिण्डी, पेशावर और दूसरे अनेक शहरोंमें जाते थे। पंजाब केसरी लाला लाजपतरायने भी इनके व्याख्यानोंमें खूब रस लिया।

इसी समय जलियांवाले बागका हत्याकांड हुआ और अनेक निर्दोष बालक, स्त्री और पुरुषोंका रक्त बहा। पंजाब में वातावरण बहुत स्फोटक होगया। ब्रिटिशसरकारके दिल में यह दहशत बैठ गई कि पण्डितजीके व्याख्यान लोगोंमें देशप्रेमकी भावना जगाता है और इन्हें स्वातंत्र्यकी प्रेरणा

देता है। इसलिए सन् १९१८ में उन्हें पंजाबसे निर्वासित कर दिया।

पंजाबसे पण्डितजी औंध रियासत (जि. सतारा) में आये। औंधके राजाने सहायता दी और ब्रिटिश सरकारको लिख दिया कि पण्डितजीकी प्रवृत्ति केवल वेदोंतक ही सीमित है। सन् १९१८ से १९४८ तक इन तीस वर्षोंमें पण्डितजीने वैदिक साहित्यमें संशोधनका कार्य किया। सन् १९४८ में राज्योंके विलीनीकरणके बाद पण्डितजी सूरत जिले (अब बलसार जिले) के अन्तर्गत पारडी तालुकामें आए और सम्प्रति वहीं पर वेद-संशोधनका काम करते हैं।

' अनन्ता: वै वेदा: ' वेदज्ञानका अन्त नहीं है। और आज ९८ वें वर्षकी आयुमें भी पण्डितजीके ज्ञानपिपासाका अन्त नहीं है।

' स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यं ' स्वाध्याय और प्रवचन करनेमें प्रमाद नहीं करना चाहिए, इस शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार इतनी वृद्धावस्थामें भी रोज सात घंटे पण्डितजी वेद विषयक लेखन कार्य करते हैं। पण्डितजीकी अभिलाषा यही है कि जिस प्रकार विश्वकी १३०० भाषाओंमें बाइबिलका अनुवाद प्राप्य है उसी प्रकार वेदके अनुवाद भी सुलभ्य हों। इतनी उमरमें इतना कार्य, इतनी बडी अभिलाषा वस्तुतः प्रशंसनीय है और तरुणोंके लिए अनुकरणीय है।

आधुनिक युगके महान् ऋषि पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर चिरकालतक जीवें और ' भूयश्च शरदः शतात् ' होकर मानवोंको प्रेरणा देते रहें।

(गुजराती ' नवनीत ' मासिकसे साभार)

[पृष्ठ ३१९ परसे]

पूजनीय श्री पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर महोदयकी सेवामें

अ भि न न्द न

(मूल संस्कृत श्लोकोंके रचयिता कविवर— श्री जनमेजय विद्यालंकार, एम. ए., शास्त्री)

[१]

योगाभ्यासमें आप महर्षि पतञ्जलिके सदृश हैं, जितेन्द्रिय हैं, कर्मयोगमें आप श्रीकृष्णजीके समान हैं, वैदिकतत्त्वोंके ज्ञानमें आप महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासके तुल्य हैं, हे महापुरुष ! आपके चरणकमलोंमें बार बार प्रणाम हों।

[२]

पुरुषार्थशील लोगोंमें आप मुख्य हैं, विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं, वेदोंके विषयमें आपने महान् प्रयत्न किया है, सब जनताके आप सम्मान भाजन हैं, हे महापुरुष आपके ! चरणोंमें शतशः प्रणाम हों।

[३]

सचमुच ही दक्षिण भारतकी भूमि धन्य है कि जिस भूमिने आप जैसे नररत्नको जन्म दिया, आपके मातापिता भी धन्य-धन्य हैं, हे महापुरुष ! आपके चरणोंमें शतशः प्रणाम हों।

[४]

मैं तथा मेरे जैसे अन्य भी बहुतसे व्यक्ति धन्य हैं कि जो आपके प्रिय शिष्य रह चुके हैं तथा जिन्हें आपने पितृवत् स्नेह भी प्रदान किया है और जिन्हें आपने सदा मार्गप्रदर्शन किया है, हे महापुरुष ! आपके चरण कमलोंको शतशः प्रणाम।

[५]

श्रीपाद आपका निज नाम है, किन्तु सर्वत्र आप श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इस पूरे नामसे प्रसिद्ध हैं, आप भारतवर्षके रत्न हैं, आप आर्यजातिके भूषण हैं, हे महापुरुष ! आपके श्रीचरणोंमें शतशः प्रणाम हों।

[६]

जगदीश्वर परमात्माकी कृपासे आपको पुण्य और यश और सुख और समृद्धि और आरोग्य सदा प्राप्त हों, आप सौ वर्ष जीवित रहें, हे महापुरुष ! आपके चरणारविन्दोंको शतशः प्रणाम। ＊ ＊ ＊



महामनीषी पं. सातवलेकरजीका

अभिनन्दन

[९८ वें जन्मदिवसके उपलक्ष्यमें]

कवि— श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, म. सम्पादक 'यज्ञयोगज्योति'

▲

महामनीषी सातवलेकरजीका करते अभिनन्दन ।
प्रतिभाशाली वेदविशारद, बुधका करते अभिनन्दन ॥ १ ॥

जिनने अपना निर्मल जीवित, किया वेदके हैं अर्पित ।
सौम्यसरलतामूर्ति देवका, हम सब करते हैं वन्दन ॥ २ ॥

शुद्धरूपमें वेदोंका, मुद्रण जिसमें आकर्षण ।
इसी लक्ष्यको रखकर जिनने, किया प्रशंसित नितप्रयत्न ॥ ३ ॥

जनता श्रुतिकी उत्तमशिक्षा, से नित होवे लाभान्वित ।
इसी ध्येयसे ग्रन्थ बनाये, उत्तम जिनमें श्रुतिचिन्तन ॥ ४ ॥

दीर्घकालतक नित सन्ध्याकर, दीर्घ आयु जिन पाई श्रेष्ठ ।
शतवर्षोंसे अधिक जियें वे, करते प्रभुका कर्म भजन ॥ ५ ॥

चित्रकार वर श्रेष्ठकलावित्, पाई जिनने कीर्ति विमल ।
स्वतन्त्रताके समर समयमें. उसमें अर्पित शुभ जीवन ॥ ६ ॥

संस्कृतभाषाके प्रचारमें, जो दिनरात परायण हैं ।
वैदिक संस्कृतिके प्रतीक उन, सज्जनका हो आराधन ॥ ७ ॥

भाष्य किया वेदोंका गीता, का उत्तम उपनिषदोंका ।
भारत रामायण अनुवादक, बुधका सदा करें सुमिरन ॥ ८ ॥

गोहत्या हो बन्द देशमें, सुरभाषा घर घर फैले ।
वेदोंका स्वाध्याय करें सब, यह ही जिनको लगी लगन ॥ ९ ॥

कर्म योगका अतिशय उत्तम, है आदर्श रखा जिनने ।
उनके पावन चरणोंमें हम, रखते श्रद्धादिव्य सुमन ॥ १० ॥

× × ×

अपने श्रद्धेयके सान्निध्यमें

(लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए, सम्पादक " अमृतलता ")

सन् ६० की बात। उन दिनों मैं होशियारपुर (पंजाब) में था, वहीं हिन्दीके प्रख्यात लेखक श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठसे मुलाकात हुई। बातचीतके दौरानमें ज्ञात हुआ कि स्वाध्यायमण्डल संस्थामें कतिपय कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। मैंने भी अनमने भावसे एक पत्र मण्डलके अध्यक्ष ' श्री सातवलेकरजी ' के नामसे डाल दिया। २-३ औपचारिक और अनौपचारिक पत्रोंके बाद मुझे अध्यक्षका निमंत्रण मिला। और इस प्रकार २२ अगस्त सन् १९६० को तबके अध्यक्ष और अबके श्रद्धेय श्री पूज्यवर्य पण्डितजीसे प्रथम साक्षात्कार हुआ। इस साक्षात्कारके मूल कारणीभूत श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठका मैं कृतज्ञ हूँ, जिनकी प्रेरणासे मेरा यहां आना संभव हुआ।

तब मैंने उन्हें अपने अध्यक्षके रूपमें देखा, और अध्यक्षके रूपमें ही उनका सम्मान भी किया। पर वे आज मेरे जीवनके एक आवश्यक घटक बन गए हैं, या फिर कहूँ कि मैं भी उनके जीवनका एक घटक बन गया हूँ। अब भी यद्यपि मेरे अध्यक्ष हैं, पर मेरे लिए वे अब अध्यक्ष कम और श्रद्धेय ज्यादा हो गए हैं। मण्डलके मेरे कार्योंमें उनकी अध्यक्षताके डण्डेकी भीति कम है, श्रद्धेयताका मूल्य ज्यादा।

उनके जीवनके संस्मरणों, कृतियों एवं व्यवहारोंके विश्लेषणात्मक अध्ययनने एक ऐसे मनुष्यका रूप मेरे सामने प्रस्तुत किया, जो " सरल, निष्कपट हृदयवाला, निःस्वार्थ प्रेम करनेवाला, बच्चोंके समान भोला इसके साथ ही महान् विद्वान्, महान् लेखक तथा यशोमूर्ति है। " अपने इस भोलेपनके कारण उन्हें जीवनमें कई बार धोखा भी खाना पड़ा, पर इस पर उन्होंने कभी पश्चात्ताप नहीं किया। उनका कहना है " स्वयं धोखा खाना अच्छा है, पर दूसरोंको धोखा देना बुरा है। धोखा देनेवालेकी आत्मशक्तिमें न्यूनता आती है। इसलिए मुझे इस बातकी प्रसन्नता है। मैंने अपने जीवनमें धोखा खाया ही खाया है किसीको दिया नहीं। "

जब एक चतुर्थाश्रमीने धोखा दिया

यह उन दिनोंकी घटना है, जब मण्डलका स्थानान्तरण पारडीमें हुआ ही हुआ था। औंधसे पारडी स्थानान्तरित होनेके कारण मण्डलको ६०–७० हजारका घाटा उठाना पड़ा। अतः उससमय मण्डल एवं पण्डितजी सभी आर्थिक विपन्नावस्थामें थे। और जो भी आगन्तुक आता था उसे मण्डलकी आर्थिक विपन्नताकी कहानी कह सुनाया करते थे। वे स्वयं कहते हैं " मैंने अपने व्यक्तिगत जीवनके लिए किसीसे अभी तक एक कौड़ी भी नहीं मांगी, उसमें मुझे लज्जाका अनुभव होता है। पर मण्डलके कार्योंके लिए लोगोंसे मांगनेमें मैं कभी नहीं शर्माया।" एक दिन एक स्वामीजी पधारे, बातचीतके दौरानमें उनसे भी पण्डितजीने मण्डलकी आर्थिक दशाकी बात कही। स्वामीजी बड़े ध्यानसे इनकी बात सुनते रहे फिर बोले– " आपको वेदानुवाद मुद्रणके लिए कितने धनकी आवश्यकता है ?

" यही करीब २–३ लाखकी " पण्डितजीने उत्तर दिया।

" बस !! इतना धन तो मेरे लिए कुछ भी नहीं है। इतना धन मैं आपको अवश्य दे दूंगा। हैदराबाद रियासतमें ९–१० लाखकी मेरी इस्टेट है। उसे मैं बेचना चाहता हूँ। बिक जाने पर जो धन आएगा, उसमेंसे २–३ लाख तो मैं आसानीसे दे दूंगा। पर...... । "

" पर क्या ? " पण्डितजीने पूछा।

" पर बात यह है... कि वह इस्टेट आजकल केन्द्रीय सरकारके कब्जेमें है, सरकारसे मेरा पत्र व्यवहार चल रहा है। कई बार मैं दिल्ली भी हो आया हूँ। आशा है कि वह इस्टेट शीघ्र

ही मेरे कब्जेमें आजाएगी। पर इस दौड़धूपमें मेरे हजारों रुपये उठ चुके हैं और अभी न जाने कितनी बार इसी तरह आना जाना पडेगा। इस समय मेरे पास एक भी पैसा नहीं है। अतः यदि आप इस समय १००० रु. दे सकें तो अत्यन्त कृपा होगी।"

श्री पण्डितजीने बैंकसे एक हजार रु. लेकर उन स्वामीजीको दे दिए। पर उस समयसे वे ऐसे गायब हुए जैसे गधेके सिरसे सींग। यह संस्मरण उन्होंने स्वयं मुझे सुनाया।

एक एजेण्टकी चालाकी

यह मेरे सामनेकी घटना है। एक आदमीने, जो अपने किन्हीं अपराधोंके कारण नासिकके सेंट्रल जेलमें बन्द था, जेलसे छूटकर पण्डितजीको पत्र लिखा कि मैं जातिसे ब्राह्मण हूँ, पर अपने कर्मोंसे कैदी हो गया। अतः अब आपकी सेवा करके अपना जीवन सुधारना चाहता हूँ। अतः मुझे सुधरनेका अवसर अवश्य प्रदान करनेकी कृपा करें।

व्यक्ति सुधारणाकी इच्छासे पण्डितजीने न केवल उसे बुला ही लिया अपितु नासिकसे पारडीतकका किराया भी भेज दिया। वह आया और मण्डलके प्रकाशनोंका सेल्स एजेण्ट नियुक्त हो गया। नम्बर एकका बातूनी और अपने बातोंसे लोगोंको फंसानेकी कलामें भरपूर माहिर। पहले कुछ दिन उसने ईमानदारीसे काम किया और फिर बादमें अपनी कलाबाजियां दिखानी शुरु कीं। वह लोगोंसे मण्डलकी पुस्तकोंके लिए धन पेशगी लेता और खा जाता। मण्डल कार्यालयमें सूचना न आनेसे पुस्तकें नहीं भेजी जातीं, फिर लोगोंके पत्र आते। यह तांता कई दिनों तक चला। पर बादमें जब भण्डाफोड हुआ तो उसे नौकरीसे अलग किया। कइयोंने उस पर दावा दायर किया और अब वह जहांसे बाहर आया था, वहीं पर फिर पहुंच गया या पहुंचा दिया गया।

इस प्रकार अपने भोलेपनके कारण पण्डितजीने अपने जीवनमें धोखा खाया, पर अपने भोलेपन पर उन्हें कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ।

तुम व्यवहारशून्य रहोगे-गुरुजीका कथन

आजके शब्दोंमें व्यवहारका अर्थ है- अवसरवादिता धोखा देना, दगा दे कर अपना स्वार्थ पूरा करना, जैसे भी हो सके धन पैदा करना आदि आदि। इन अर्थोंमें प्रयुक्त हुए हुए आधुनिक व्यवहारसे श्री पण्डितजी सर्वथा शून्य हैं। जब वे सावन्तवाडीमें पढते थे तब इनके गुरुजीने इन्हें कहा था- "श्रीपाद! तुम चाहे कितने ही बडे विद्वान् हो जाओ, पर रहोगे तुम सर्वथा व्यवहारशून्य ही। तुम इस संसार के साथ निपटना अपने इस जन्म तो सीख नहीं सकते, आगे की भगवान् जाने।" इन शब्दोंका स्मरण आज भी पण्डितजीको हो आता है तो कहते हैं कि मेरे गुरुजीका कथन सर्वांशमें सत्य निकला। इस संसारको अभी तक न पहचान सकनेके कारण कई बार ठोकरें खाई, पर हर ठोकरने इनके संकल्पको और भी दृढ किया कि वे कभी किसीको धोखा नहीं देंगे। एक बार इनके आत्मीयने ही इनके साथ दगा की, पर उस आत्मीयके साथ अनेक बार मुलाकात होने पर भी इन्होंने उसका प्रसंग नहीं छेडा।

तुम मुझे जो भी दण्ड दोगे मैं सहर्ष स्वीकार करूंगा

मण्डलकी आर्थिकविपन्नता कभी कभी उनके अन्दर घनी निराशा पैदा कर देती है। इस निराशाके प्रवाहमें यह भी कह जाते हैं कि "कभी कभी मुझे बडा पश्चात्ताप होता है कि यह वैदिक संशोधनका कार्य मैंने शुरू किया ही क्यों? यदि मैं इस झंझटमें न पडता तो आज एक संस्था चलानेकी चिन्ता तो मेरे सिर पर न होती।"

यह चिन्ता आज भी उनको तंग करती है कि इस मण्डलकी आर्थिक दशा कैसे सुधरेगी? श्रीमन्त तो इस ओर देखना भी पसन्द नहीं करते और जो पसन्द करते हैं उनके पास धन नहीं! क्या करें।

मैंने कई बार उन्हें ढांढस बंधानेका प्रयत्न किया, एक दिन फिर वे इसी चिन्तामें थे। बार बार समझाने पर भी उनको मानते हुए न देखकर मुझे गुस्सा चढ आया और बोला- "आप मेरे बार बार कहने पर भी चिन्ता नहीं छोडते हैं। आपकी आयु अब चिन्ता करनेके लिए नहीं है। अब इस मण्डलकी चिन्ता अपने उत्तराधिकारीके लिए छोड दीजिए। मैं तो ठहरा आपका नौकर, अतः जब आप मुझे जवाब दे देंगे, तब मुझे मण्डल छोड देना पडेगा। इस कारण यदि मुझमें आपका विश्वास न भी बैठे, तो यहाँ आपके सुपुत्र तो

हैं ही वे मण्डलकी चिन्ता करते रहेंगे। आप क्यों बिना कारण दुःखी होते हैं ?"

इन शब्दोंसे पण्डितजी बडे दुःखीसे हुए और बोले "मैंने आपको अभीतक कभी भी नौकर नहीं समझा, आपको मैंने सदा इस मण्डलका अविभाज्य सदस्य ही समझा है। पता नहीं आज आप कैसी बात कर रहे हैं ! यदि अनजाने आपके प्रति मुझसे कोई अपराध हो गया हो, तो उसके लिए आप मुझे जो भी दण्ड दें, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करनेके लिए तैय्यार हूँ।"

सुनना था कि मेरे ऊपर घडों पानी पड गया और मैं बिल्कुल ठण्डासा हो गया। फिर कभी मैंने इस बातकी चर्चा नहीं की।

परमेश्वर सहायक

ऐसे पुनीत उद्देश्यवाले तथा दृढसंकल्प व्यक्तियोंकी परमेश्वर भी सहायता करता है, इसमें कोई शक नहीं। श्री पण्डितजीने स्वयं यह संस्मरण सुनाया था "जब गुरु शुरु में कुछ वेदमंत्रोंकी व्याख्या छापकर मैंने विविध संस्थाओं, आर्यसमाजों और व्यक्तियोंको भेजी और यह भी प्रार्थना की कि यह पुस्तक आपको भेजी जा रही है अतः कृपा कर इस पुस्तकका मूल्य आठ आने आप भेज दें, तो उसकी प्रतिक्रियामें १०-१५ ने ही मूल्य भेजा, कुछने पुस्तकके लिए केवल आभार प्रकट किया और अधिकांश व्यक्तियोंने आभार प्रकट करना या प्राप्तिसूचना देना भी आवश्यक नहीं समझा। कहना न होगा कि तीसरी कोटिके व्यक्तियोंमें अधिकांश आर्यसमाजी ही थे, जिनका वेदाध्ययन उद्देश्य है।"

"इस घटनाने मुझे यह बता दिया कि इस काममें हाथ डालना बडे ही जोखिमका काम है। अतः मैंने वेदमुद्रणका विचार करीब करीब त्याग ही दिया था कि अचानक एक दिन मेरे नामसे २००० का एक चेक आया, उसके साथवाले पत्रमें लिखा था कि वेदमुद्रणके लिए साधका धन भेजा जा रहा है। इस चेकको मैंने ईश्वरीय प्रेरणा व प्रसाद मानकर काम शुरु कर दिया। वह काम उसीकी कृपासे आज भी सुचारु रूपसे चल रहा है।"

यह सच है कि पुण्यकार्य करनेवालोंकी सहायता परमेश्वर भी करता है। साथ ही समय-समय पर प्रेरणा भी देता है।

आर्यसमाजके प्रति प्रेम

अपने श्रद्धेयके जीवन दर्शनका जब जब मैंने अध्ययन किया, तब तब मैंने उनके हृदयमें महर्षिके प्रति भक्ति एवं श्रद्धा तथा आर्यसमाजके प्रति प्रेमको हिलोरें खाते देखा।

लाहौरके बच्छोवाली आर्यसमाजके वे ही उद्धायक थे। पण्डितजी स्वयं कहते हैं कि 'मुझसे पहले उस समाजके सत्संगमें सिर्फ १०-१५ सदस्य आते थे, पर जब मैं वहां जाने लगा और वेद-व्याख्यान देने लगा, तो थोडे ही समय के बाद सैंकडों सदस्य आने लगे।' इस प्रकार शुरुसे ही आर्यसमाजसे इन्हें प्रेम रहा है, पर आर्यसमाजने इनकी हमेशा उपेक्षा की है। इस प्रसंगमें मुझे उन्हींके द्वारा सुनाया गया एक संस्मरण याद आ गया, वह इस प्रकार है—

'मथुरामें महर्षि दयानन्दकी जन्मशताब्दी मनाई जा रही थी, और उसमें वेदसम्मेलनका भी आयोजन था। मथुरा-वासियोंने बडे ही आदर सत्कारसे श्री पंडितजीको बुलाया और वेदसम्मेलनका अध्यक्ष मनोनीत किया। पर यह बात एक वेदविद्वान्को (जो आज भी जीवित हैं, और आर्यसमाजी वेदविद्वानोंमें अग्रगण्य समझे जाते हैं, मैं उनका नाम लेना उचित नहीं समझता) बुरी लगी और उन्होंने लोगोंमें प्रचार करना शुरु किया कि पं. सातवलेकरजी तो आर्य-समाजके विरोधी हैं, आर्यसिद्धान्तोंके विरुद्ध लिखते हैं, आदि-आदि। कुछ सज्जनोंमें उनका यह प्रचार कामयाब हुआ और वे कुछ व्यक्तियोंका एक डेपुटेशन लेकर संयोजकके पास पहुंचे और कहा कि 'हमें यह पसन्द नहीं कि एक आर्यसिद्धान्तका विरोधी आर्यसमाज द्वारा संयोजित वेद सम्मेलनका अध्यक्ष बने। अतः आप पं. सातवलेकरजीको अध्यक्ष न बनायें।' संयोजकने उत्तर दिया कि 'वे एकबार अध्यक्ष मनोनीत हो चुके हैं, अतः अब हम उनको नहीं हटा सकते। हां, यदि वे स्वयं अध्यक्ष बननेसे इन्कार कर दें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं।'

वह डेपुटेशन वहांसे छूटकर पण्डितजीके पास पहुंचा और प्रार्थना की वे (पण्डितजी) वेदसम्मेलनका अध्यक्ष बननेसे इन्कार कर दें। पर पण्डितजीने कहा कि 'वेदसम्मेलन के आयोजकोंने इतने प्रेमसे बुलाया है, अतः मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि आयोजक स्वयं मुझे

मना कर दें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, मैं वापस चला जाऊंगा। ' डेपुटेशन यहांसे भी निराश लौटा। अन्तमें वेद सम्मेलन पण्डितजीकी अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार आर्यसमाज पर अपने प्रेमको उंडेलते हुए भी पण्डितजीने आर्यसमाजियोंसे हमेशा उपेक्षा ही पाई है। आज भी यही बात अधिकांशमें सत्य है।

मेरे श्रद्धेयका प्रेम मेरे ऊपर अपार है। उन्होंने मुझसे ' शिष्यं पुत्रवदाचरेत् ' की तरह ही सदा व्यवहार किया है। उनका यह विश्वास है कि उनके बाद भी मण्डलका कार्य मैं सम्हालूंगा। पर इतने गुरुतर कार्यभारको सम्हालने मैं अभी संशयित हूँ। यही सोचता हूँ कि इस भारको मैं सम्हाल सकूंगा भी या नहीं। और दूसरी बात—

रहिमन रहिलाकी भली, जो परसे चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय॥

यह भी है। पर यदि श्रद्धेयकी प्रेरणा, आशीर्वाद और प्रेम रहा, तो मैं भी अपने कार्यमें सफल हो सकूंगा, इसमें संशय नहीं।

एक दिन एक योगी औंधमें मेरे घर आए और ५-६ दिन रहे। हमारे घरके पास एक बडा सा तालाब था। वे योगी जिस दिन आए, उसी दिन तालाबके बीचोबीच जाकर पानीपर शवासन मारकर ध्यानमें लीन हो गए। लोगोंको मालूम पडा कि पानीमें मुर्दा तैर रहा है। क्योंकि १-२ घंटे तक लोगोंको उस शरीरमें कोई हलचल नहीं दिखाई दी। ग्रामपंच, पुलिस और सैकडों आदमी वहां इकट्ठे हो गए और उस शरीरको किनारे पर लाकर पंचनामा करनेकी तैय्यारी की ही थी कि वे योगीजी महाराज उठ बैठे। कई डरके मारे भाग गए। पर बादमें जब उनकी हकीकत मालूम पडी, तो सभी आश्चर्य करने लगे। उस दिन उन्होंने ३-४ घंटेका अपना अनुष्ठान पानीमें शवासन मारकर ही किया।

× × ×

औंधमें रहते हुए एक योगी हमारे घर आए। वे हमारे घर ७-८ दिन रहे। उन्होंने पारद भस्म (पारेका भस्म) जलते कोयलों पर करीब आधे घंटेमें ही करके दिखाया। यह सब प्रयोग उन्होंने मेरे ही हाथसे करवाया था। इस भस्मसे करीब ३० हजार रुपयेका सोना भी तांबेसे इसी प्रकारसे सरल तरीकेसे बनाया जा सकता है, यह प्रयोग मैं फिर कभी आकर दिखाऊंगा यह कहकर चले गए। वे यह भी कहते थे कि इस पारद भस्मके सेवनसे वृद्ध भी तरुण हो सकते हैं। इस भस्मको मैंने सुरक्षित रख रखा था, पर औंधसे पारडी आते हुए बीचमें वह कहां खो गया, मालूम ही नहीं पडा।

—पं. श्री. दा. सातवलेकर
" एक संस्मरण "

× × ×

पण्डितमें निहित अनेक गुणोंमेंसे एक गुण उनकी वक्तृत्वशालिता है। उनका सप्रमाण, विवेचनात्मक भाषण श्रोताओंपर प्रभाव डाले बिना नहीं रहता। अध्ययन, अध्यापन और संस्कृतिका जाज्वल्यमान अभिमान इत्यादि गुणोंके कारण पं. सातवलेकर अखिलभारतके भूषण रूप हैं।

—श्री ना. गो. चापेकर

महामान्य श्री पं. सातवलेकराभिनन्दनम्

(तदीयं ९८ तमं जन्मदिवसमुपलक्ष्य)

(कविः— श्रीधर्मदेवो विद्यामार्तण्डः (देवमुनिर्वानप्रस्थः) 'यज्ञयोग-ज्योतिः' पत्रिकासम्पादकः)

मेधावी सुपरिश्रमी धृतियुतः, ख्यातः कलावृद्वरो
वेदानां मननेऽनिशं रत इह, स्वार्थं विहायाखिलम्।
शुद्धं मुद्रणमत्र दोषरहितं, कुर्वन् श्रुतीनां मुदा
मान्यः सातवलेकरो विजयते, सत्कर्मयोग्यग्रणीः ॥ १ ॥

मेधाबुद्धिवाले, परिश्रमी, धैर्यशाली, सुप्रसिद्ध, कलाकारोंमें श्रेष्ठ, अपने सम्पूर्ण स्वार्थको छोडकर अर्थात् निःस्वार्थभावसे जो दिन रात वेदोंके मनन करनेमें व्यस्त हैं। प्रसन्न मनसे वेदोंके दोष रहित शुद्ध मुद्रणके कार्यको करते हुए सत्कर्म योगियोंमें अग्रगण्य सम्मान्य सातवलेकरजी विजयी हों ॥ १ ॥

व्याख्यानं विदधेऽखिलं सुविततं, योऽथर्ववेदस्य सद्
गीताया विबुधस्तथोपनिषदां, व्याख्यां चकाराद्भुताम्।
पत्रं वैदिकधर्मसंज्ञमिह यः, सम्पाद्य लेभे यशो
मान्यः सातवलेकरो विजयते, सत्कर्मयोग्यग्रणीः ॥ २ ॥

जिन्होंने अथर्ववेदकी विस्तृत और सम्पूर्ण व्याख्या की और जिन विद्वान्ने गीता और उपनिषदोंकी भी अद्‌भुत व्याख्या की, 'वैदिक धर्म' नामक पत्रिकाका सम्पादन करके जिन्होंने यश प्राप्त किया, ऐसे सत्कर्मयोगियोंमें अग्रणी सन्मान्य सातवलेकरजी विजयी हों ॥ २ ॥

निष्ठा भारतसंस्कृतौ सुविदुषो, यस्याचला विद्यते
कार्यैर्यो विविधैः प्रसारकरणे, गीर्वाणवाण्या रतः।
वार्धक्येऽपि युवेव कर्मनिरतो, योगस्य शक्त्या सुधी—
मान्यः सातवलेकरो विजयते, सत्कर्मयोग्यग्रणीः ॥ ३ ॥

जिन विद्वान्की भारतीयसंस्कृतिमें अचल निष्ठा है, अपने अनेक तरहके कार्योंसे जो संस्कृतवाणीके प्रचारकार्यमें रत हैं, जो प्रज्ञावान् अपने योगकी शक्तिसे वृद्धावस्थामें नवयुवकके समान कार्य करते हैं, ऐसे सत्कर्मयोगियोंमें अग्रगण्य सन्मान्य सातवलेकरजी विजयी हों ॥ ३ ॥

देवं सर्वसुखप्रदं प्रमुदितः, संप्रार्थयेऽहं नतो
दीर्घायुः प्रददात्वसौ सुविदुषे, आरोग्यमग्र्युत्तमम्।
सेवाकार्यपरायणः सुविमलां कीर्तिं च सम्पादयन्
मान्यः सातवलेकरो विजयतां, सत्कर्मयोग्यग्रणीः ॥ ४ ॥

सर्व सुखके प्रदाता देवाधिदेव प्रभुसे प्रसन्नता पूर्वक नम्र होकर यही प्रार्थना करता हूँ कि इन विद्वद्वरेण्यको वे उत्तम आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करें। सेवाके कार्यमें सतत परायण रहते हुए तथा विमल यशका सम्पादन करते हुए सत्कर्म योगियोंमें अग्रगण्य सम्मान्य सातवलेकरजी विजयी हों ॥ ४ ॥

\+ + +



हमारे तीर्थरूप बाबा

(लेखिका— सौ. लतिका सातवलेकर)

[लोगोंकी ऐसी दृढ धारणा है, कि वेदविद्वान्, योगी और दार्शनिक इन तीनोंका संसारसे कोई वास्ता नहीं। ये सर्वदा आत्मकेन्द्रित ही रहते हैं। ये वास्तविक अर्थोंमें 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' होते हैं। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी उससे सर्वथा उदासीन रहते हैं। उन्हें अपने बालबच्चों, नाती पोतोंसे कोई प्रेम या मोह नहीं होता आदि आदि। लोगोंकी यह धारणा अन्योंके विषयमें सत्य हो सकती है, पर वेदविद्वान्, योगी और दार्शनिक इन तीनोंका जीवन बिताने पर भी श्री पं. सातवलेकरजीमें यह धारणा चरितार्थ नहीं होती। वे अपने व्यस्त दैनंदिनमेंसे भी थोडा बहुत समय अपने परिवारके सदस्योंके लिए निकाल ही लेते हैं। अपने पारिवारिक सदस्योंके प्रति उनकी प्रेमकहानी उनके ही पुत्रवधूकी जबानी सुनिए]

आज तो बाबा ९७ वे साल पूरा कर ९८ वें वर्षमें प्रवेश कर रहे है, इसलिए सब आदरसे उनका सम्मान करते हैं, यह सब जानने और सुननेका सौभाग्य मुझे मिल रहा है। मेरा पुत्रवधूके रूपमें उनके परिवारमें प्रविष्ट होना मेरे पूर्वजन्मका पुण्य ही है। उन जैसे शान्त और ऋषि सदृश महान् पुरुषकी कुछ सेवा हम कर सकें, यही हमारा भाग्य है। पर उन्हें हमारी सेवाकी आवश्यकता ही कब हुई ? उनका स्वभाव ही ऐसा है कि हममेंसे किसीसे तो क्या, अपनी धर्मपत्नीसे भी अपना कोई काम वे नहीं करवाते। नौकरोंकी तो बात ही छोड दीजिए।

मैं अनेक वर्षोंसे उन्हे ऐसा ही देखती आई हूं। रोज ४॥-५ बजे प्रातः उठना, दैनिक कृत्यसे निबट कर (पहले कुछ दिनोंतक गरमपानीके लिए बायलर भी स्वयं जलाते थे, पर अब यह काम एक नौकर करता है), संध्योपासना करके ७ बजे तक निवृत्त होजाना, ८ बजे गायका दूध पीना और फिर अपने लेखन कार्यमें व्यस्त होजाना।

डाक देखना, पत्रोंके उत्तर लिखना, यह काम आज भी स्वयं ही करते हैं। सब लोग अपने-अपने काम स्वयं ही करें, यह उनका कहना है। कुछ दिनों पूर्वतक यदि प्रेससे (जो उनके कार्यालयसे थोडी दूर है) कुछ लेना देना होता तो स्वयं जाते थे, पर जब लोगोंने बहुत समझाया तो अब उन्होंने आना जाना बन्द कर दिया। उस समय यदि हम-



लेखिका

मेंसे कोई कहता, 'यह सब आप स्वयं क्यों करते हैं? आप भले ही हमसे न कहें, पर नौकर तो हैं न?'

तो कहते, 'उससे मेरा व्यायाम होता है। उससे मेरा स्वास्थ्य ठीक बना रहता है।'

१२ बजे भोजन, तदनन्तर १२॥ से १॥ तक विश्राम। उन्हें दिनमें कभी नींद आई हो, यह मैंने नहीं देखा। फिर ४ बजे पुनः दूध। उसके साथ कुछ फल हों तो वे। ५॥ से ६ बजे तक बाहर वायुसेवन।

अब जरा कम दीखता है। अतः जब कभी माताजी (मेरी सास) कहती हैं 'अब अन्धेरा होगया है, घूमिए मत। आपको ठीक दीखता नहीं है।'

तो उत्तर देते हैं, 'दीखना जरा कम ही तो होगया है, उसमें डरनेकी क्या बात?

वायु सेवनके बाद संध्या और भोजन करके ९ बजे सोनेके लिए चले जाते हैं। यह है उनका दैनिक जीवन और यही कार्यक्रम उनका पिछले अनेक वर्षोंसे मैं देखती आई हूँ। उसमें कोई बदल नहीं। उन्हें 'थकावट' या 'ऊबना' मालूम ही नहीं। इस प्रसंगमें मुझे एक संस्मरण याद हो आया है। जब हम पहिली बार पारडी आए, उस समय हम मानों जंगलमें ही आ बसे हैं, ऐसा प्रतीत होता था। पासपडौस नहीं, भाषा आती नहीं थी और घर भी एकदम गॉवसे बाहर। किससे बातचीत करें?

तब एकदिन माताजी उनसे बोलीं, 'हमारा समय तो बीतता ही नहीं।'

सुनकर बाबा बोले, 'आश्चर्य है!!' मुझे अपने कामके लिए दिन भी पूरा नहीं पडता, सूर्य कब उगा और कब अस्त होगया, पता ही नहीं चलता। फिर 'समय बीतता ही नहीं' यह कहने या सुननेके लिए मेरे पास अवसर ही किधर है।'

सब काम तो बाबा करते हैं। पर इसका बहुत सारा श्रेय माताजी पर भी है। अपनी उमरके १० वें सालसे लेकर आज करीब–करीब ८५ वर्ष उन्होंने बाबाकी सेवा की और अब भी कर रही हैं। अशिक्षित होते हुए भी माताजीने हर कठिन परिस्थितिमें भी बाबाका साथ दिया। उनकी क्रान्तिकारिताके कालमें माताजीको अनेक आपत्तियां सहनी पडीं। लोगोंके घर अनेक वर्ष गुजारने पडे, उसके अलावा बाबा कैदसे कैसे छूटते हैं, घर वापस कब आते हैं, यह भी चिन्ता सताती थी। पर उन्हें किसी प्रकारका कष्ट नहीं हुआ। माताजीकी बहुतसी उमर गॉंव–गॉंव फिरनेमें ही बीत गई। पर उन्होंने कभी भी अपने मुंहसे खेद या दुःख के उद्गार नहीं निकाले। जबसे वे लाहोर आए, तबसे उनके सुखमय दिन शुरु हुए।

लाहोरके निवासकालमें ही माताजीको काश्मीर, शिमला, मसूरी आदि प्रेक्षणीय स्थल देखनेको मिले। तथा कलकत्ता, आगरा, दिल्ली शहर भी देखे। बाबाका व्यवसाय चित्रकला और फोटोग्राफीका था, अतः बराबर यात्रा होती रहती थी। बादमें औंध जानेके बाद सामवेदमुद्रणके सिलसिलेमें दक्षिणभारतकी भी यात्रा की।

इस प्रकार जैसे जैसे बाबाका यश फैलने लगा, तैसे तैसे घरमें अतिथियोंका आना जाना बढ गया। कोई दर्शनके लिए, कोई भेंटके लिए, तो कोई दान देनेके लिए, तो कोई नौकरीके लिए। इसलिए गरीबसे लेकर धनीतक अथितिके रूपमें आते थे, उनका भोजन इत्यादिका प्रबन्ध सब माताजीको ही करना पडता था। किसीको दूध तो किसीको केवल उबला हुआ शाग, किसीको गरमपानी तो किसीको ठण्डा, किसीको कुछ तो किसीको कुछ। पर इन सब कष्टोंको माताजीने खुशीसे सहा। बाबा केवल घरके खर्चके लिए दे देते थे और सब कुछ माताजीको ही करना पडता था।

अब हम जब कभी कहते हैं, 'पारडीमें शाक, दूध, घी महंगा है।'

तो बाबा पूछते हैं, "क्या औंधमें ऐसा नहीं था? क्या!!! ६–८ आने सेर शाक?" गरज यह कि बाजार कैसे किया जाता है यही बाबाको अभीतक पता नहीं।

घरका सारा प्रबन्ध माताजी करती थीं। इसलिए घरकी ओरसे निश्चिन्त होकर बाबा शान्त चित्तसे लेखन कार्य करते थे।

इतना सब होने पर भी बाबा अपने परिवार पर खूब प्रेम करते हैं। २०–२५ वर्ष पूर्वकी एक घटना है। एक दिन माताजीके पेटमें बहुत दर्द शुरु हो गया। गांवमें उस दिन डॉक्टर भी नहीं था। घर मैं और मेरे देवर हम दो और तीसरे बाबा थे। शामके समय माताजीका दर्द और ज्यादा हो गया। हाथ पैर ठण्डे हो गए। हमारी नौकरानी हाथ पैरोंमें तेल मलकर सेक देने लगी और फिर कम्पाउण्डरने एक गोली दी। तब रातके ११–१२ बजे वे होशमें आने लगीं

उस समय बाबा– आज भी वह सब मेरे आंखोंके सामने घूमता है– माताजीकी खाटके पास आंखोंमें आंसू भरे खडे हुए थे– इसको कहते हैं प्रेम।

बाबा ऊपरसे ऐसे दीखते हैं कि मानों ये विनोदप्रियतासे शून्य हैं। पर वास्तविकता कुछ और है। कभी कभी बाबा और माताजीमें विनोद भी सुननेको मिलता है। बाबाको आज तक न जाने कितने लोगोंने पैसेके मामलोंमें डुबाया है। पर अब भी किसीने आकर पैसे मांगे तो घरमें किसीको न बताए ही पैसे दे देते हैं। फिर हम पूछते हैं, उसे बेकार ही पैसे क्यों दिए?

तब माताजीको बहुत गुस्सा आता है और कहती हैं, 'पता नहीं आपको पिछले जन्मका अभी कितना देना बाकी है, जो अभीतक खतम होने ही नहीं आता?'

तो बाबा हंसकर कह देते हैं, "यदि काटकसर करके मैं चलता तो आज मेरे घर पर सोनेके खपरैल चढे होते। पर यह मुझे बताओ कि आज तक तुम्हें किसी चीजकी कमी पडी है?

और यह सत्य भी है। औषधकी अपेक्षा घर जगह आमका बाग सब बढा है। बाबाके कारण बडों बडोंसे परिचय होता है मान मिलता है। "पारसके स्पर्शसे लोहा भी सोना हो जाता है।"

अपने पौत्र–पौत्रियोंपर बाबाका बहुत प्रेम है। वे हमेशा इनकी उन्नतिकी चिन्ता करते हैं। उन्हें नई नई बातें सिखाते हैं।

बाबाने भोजनके विषयमें कभी भी कुछ नहीं कहा जो सामने आया खा लिया।

ऐसे हैं हमारे बाबा। हम पुत्रवधुओंको तो उनका कभी भी डर नहीं लगा। वे दोनों हमसे सगे पिता माताकी तरह ही व्यवहार करते है। गल्तीसे भी वे अपने सम्बन्धियोंसे जोरसे नहीं बोलते। वे घरमें हैं या नहीं, इसकी भी प्रतीति किसीको नहीं होती। पर जब वे बाहर प्रवास पर चले जाते हैं, तो घर सूना सूना लगने लगता है।

ऐसे हमारे बाबाको परमेश्वर और ज्यादा उमर दें। वेद वाङ्मयके लिए ऐसे महापुरुषकी अत्यंत आवश्यकता है। राष्ट्रको ऐसे महान् देशभक्तकी जरूरत है। पर सबसे बढकर हम पुत्रों, पुत्रवधुओं और सम्बन्धियोंको ऐसे प्रेमसे भरपूर माता पिताके कृपाछत्रकी बहुत वर्षोंतक आवश्यकता है।



कवि

वे द मू र्ति
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
महाभागानाम्

९८ तम-जन्ममहोत्सवनिमित्तम्
स्तुतिसुमनोमाला

(कवि— श्री श्रीधरभास्कर वर्णेकर, एम. ए., प्राध्यापक नागपुर विश्वविद्यालय)

▲

जयतु सकलविद्याशास्त्रमूलायमाना
परमपुरुषनिद्राश्वासवातायमाना ।
कृतिमतिपथगाढध्वान्तदीपायमाना
श्रुतिरिति भुवनेऽस्मिन् विश्रुता चित्कला सा ॥१॥

सम्पूर्ण विद्याशास्त्रकी मूलभूत, परमपुरुष भगवान्की निद्रामय श्वास निःश्वासकी प्राणरूप, बुद्धिमानोंके मार्गके अन्धकारको दूर करनेके लिए दीपक स्वरूप इस भूमण्डलमें सुप्रसिद्ध उस श्रुति (वेद) की जय हो ॥ १ ॥

आरण्यकैः प्रथममङ्कुरिता कदाचिद्
या ब्राह्मणैस्तदनु पल्लवितेव गूढैः ।
कालेन या कुसुमितोपनिषद्भिरुच्चैः
संवर्धतां चिरमसौ भुवि वेदवल्ली ॥ २ ॥

आरण्यकोंके द्वारा अंकुरित हुई हुई, उसके पश्चात् गूढ रहस्यवाले ब्राह्मणग्रंथोंसे पल्लवित (पत्तोंसे युक्त) हुई हुई तथा समयानुसार ऊंचे विचारोंसे युक्त उपनिषदोंसे कुसुमित (फूलोंसे युक्त) हुई हुई यह वेदरूपी बेल (लता) संसारमें अनन्तकालतक बढती रहे ॥ २ ॥

विद्वद्वरेण्यशतवर्णितपुण्यकीर्तिं
श्रीपादनामधरपावनशान्तमूर्तिम् ।
आश्रित्य सम्प्रति कलौ विपरीतकाले
जागर्ति वेदपुरुषो जनमङ्गलार्थम् ॥ ३ ॥

सैकडों विद्वद्वरेण्योंमें जिसकी पुण्य कीर्ति फैली हुई है, ऐसी श्रीपादनामको धारण करनेवाली पावन और शान्त मूर्तिका आश्रय लेकर इस विपरीतकाल कलियुगमें भी मनुष्योंके कल्याणके लिए वेदका पुरुष जाग रहा है ॥ ३ ॥

नामश्रुतिस्तव बतानयति श्रुतिं ताम्
अस्मत्स्मृतिं स्मृतिरिव श्रुतिभाष्यभूता ।
मूर्तिश्च दृष्टिपथमुज्ज्वलवेदभक्तिं
सद्रूपतामिवगतामतिरूपणीयाम् ॥ ४ ॥

श्रुतियोंके भाष्यरूप स्मृतियोंके समान तुम्हारी नाम श्रुति हमें वेदोंकी याद दिलाती है। और तुम्हारी मूर्ति अनिर्वचनीय वेदभक्तिकी याद दिलाती है ॥ ४ ॥

अस्तङ्गतश्रुतिमनोहरमन्त्रघोषे
म्लेच्छाधिपत्यपरिदूषितहिन्दुदेशे ।
भाषानुवादकृतिभिः पुनरेव कीर्णो
बोधस्त्वया श्रुतिगतः स हि वेदमूर्ते ॥ ५ ॥

हे वेदमूर्ते ! म्लेच्छोंके आधिपत्यके कारण अपवित्र हुए हुए हिन्दुदेशमें वेदोंके मनोहर मंत्रघोषके लुप्त हो जानेपर अपने भाषानुवादकी कृतियोंसे वेदोंमें सन्निहित ज्ञान तुमने फिर फैलाया ॥ ५ ॥

आथर्वणप्रथितपार्थिवसूक्तगूढम्
उद्गीय तत् प्रथममेव हि राष्ट्रगीतम् ।
राष्ट्रप्रबोधनपरिक्षमता श्रुतीनां
संदर्शिता श्रुतिरहस्यविदा त्वयैव ॥ ६ ॥

अथर्ववेदके विख्यात पृथ्वीसूक्तको प्रथम राष्ट्रगीतके रूपमें लोगोंके सामने रखकर वेदके रहस्यको जाननेवाले तुमने वेदोंके राष्ट्रको जागनेका सामर्थ्य भी जनताके सामने दिखाया ॥ ६ ॥

दुर्बोधमन्त्रमयगूढगुहाहितोऽपि
निःश्रेयसाभ्युदय-सिद्धिनिदानभूतः।
अज्ञानदैन्यपतितस्य हितं स वेद—
सन्देश आवहति ते नियतं जनस्य ॥ ७ ॥

दुर्बोध मंत्रोंमें गूढरूपसे स्थित, पर निःश्रेयस और अभ्युदयकी सिद्धिका कारण जो वेद सन्देश है, वह अज्ञान और दीनताके कारण पतित मनुष्यके कल्याणार्थ सर्वत्र फैल रहा है ॥ ७ ॥

या ज्ञानभक्तिकृतियोगविशेषसारा
कैश्चित् समन्वितसमस्तमतेति चोक्ता
गीता पुनश्च भवता विशदीकृताऽसा
उत्कर्षहेतुपुरुषार्थविबोधिनीति ॥ ८ ॥

कुछ लोगोंके अनुसार जो ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग इनमेंसे किसी विशेषयोगका ही वर्णन करती है, तथा कुछ लोगोंके अनुसार जो इन तीनों योगोंका समन्वय करती है, ऐसी गीता पर भी तुमने 'पुरुषार्थ बोधिनी' टीका लिखकर उसको स्पष्ट किया ॥ ८ ॥

यद् यद् भवान् सदसि वाऽथ कथाप्रसङ्गे
वक्ति प्रबोधनपरं जनताहिताय।
तत्तन्निरन्तरनिजानुभवैकसारं
नो चेच्छ्रुतिप्रथितसूक्तिपरप्रमाणम् ॥ ९ ॥

जनताके हितके लिए जन जागरणकी जो भी बाते आप सभामें अथवा प्रवचनोंमें कहते हैं, वह सब आपके अपने अनुभवका सार ही होता है, अन्यथा वह वेदोंमें आए हुए सुभाषितों पर आधारित होता है ॥ ९ ॥

चित्रं त्वया करगतार्थकरी प्रसिद्धा
वेदप्रचारसुविचारपरायणेन।
त्यक्ता हि सिद्धिरिव चित्रकला प्रसन्ना
ब्रह्मप्रसक्तमनसा हठयोगिनेव ॥ १० ॥

वेदप्रचारके उत्तम विचारोंसे युक्त आपने हाथमें आई हुई तथा धनको देनेवाली उत्तम चित्रकलाको भी उसी प्रकार छोड दिया जिस प्रकार ब्रह्ममें लगे हुए मनवाला हठयोगी ऋद्धि-सिद्धियोंको छोड देता है ॥ १० ॥

ज्ञानार्जनैकसुतपोऽर्जितमूर्जितं यद्
विद्वद्वरेण्यशतदुर्लभमद्वितीयम्।
व्याप्नोतु तद् दशदिगन्तरचक्रवालं
कस्तूरिकापरिमलप्रतिमं यशस्ते ॥ ११ ॥

ज्ञानार्जनरूपी तपके द्वारा अर्जित सैंकडों विद्वद्वरेण्योंके द्वारा भी दुर्लभ और अद्वितीय ऐसा कस्तूरीकी सुगंधिकी उपमावाला आपका यश दशों दिशाओंमें व्याप्त हो ॥ ११ ॥

शैलाधिराजशिखरोत्तमतुङ्गता या
याऽगाधतार्णवगता सुविशालता वा।
सूर्यस्य या प्रखरताऽनुभवं गता मे
ताः पिण्डिता इव गुरो तव पाण्डितत्त्वे ॥ १२ ॥

हे गुरो ! शैलाधिराज हिमालयके शिखरकी जो ऊंचाई है, समुद्रकी जो अगाधता और विशालता है, तथा सूर्यकी जिस प्रखरताका मैंने अनुभव किया है, वह सब गुण आपके पाण्डित्यमें एकत्रित हो गए हैं ॥ १२ ॥

आजन्मनो जनजनार्दनमिद्धभक्त्या
संराध्य तं तनुमनोवचनैरखण्डम्।
सञ्चिन्वतां सुकृतमत्र भवादृशां हि
मूर्ध्नि स्थितोऽतिविमलः सुयशः किरीटः ॥ १३ ॥

जन्मसे लेकर एकाग्रभक्ति, तन-मन और वचनसे जनता जनार्दनकी आराधना करके पुण्यको इकट्ठा करनेवाले आप जैसोंके सिर पर अत्यन्त विमल सुयशका मुकुट धरा हुआ है ॥ १३ ॥

आपत्तिपूरितसरिद्विनिमज्जितानि
सम्पत्तिनाशपविपातविचालितानि
नैव भ्रमन्ति न चलन्ति न यान्ति मोहं
ध्येयस्थिराणि हि भवादृशमानसानि ॥ १४ ॥

अपने ध्येयमें स्थिर हुए हुए आप जैसोंके चित्त आपत्तिसे भरी हुई नदीमें डूबने पर भी, सम्पत्तिनाशरूपी वज्रमें गिरने पर भी न विचलित होते हैं, न अपने ध्येयसे भ्रष्ट होते हैं, और न मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

यातं वयस्तवगुरो शतवर्षदेश्यं
कायस्त्वसौ न सहसा जरसाऽभिभूतः।
केशेष्वसौ धवलिमा सुयशस्त्वदीयं
कलिप्रभावजयजन्यमिव व्यनक्ति ॥ १५ ॥

हे गौरवशालिन् ! आपकी उमर सौ वर्षके करीब आ चुकी है, फिर भी यह शरीर बुढापेसे सहसा ग्रस्त नहीं है। आपके बालोंकी यह सफेदी कालके प्रभावको जीतनेके कारण उत्पन्न हुए आपकी कीर्तिको ही प्रकट कर रही है ॥ १५ ॥

वाक्चित्तकर्मसु सदैव समुच्छलन्तीम्
उत्साहशक्तिमवलोकयतां त्वदीयाम् ।
षष्ठ्यब्दपूर्तिसुमहोत्सवमानितानां
लज्जा वपुर्नमयतीव विकम्पयन्ती ॥ १६ ॥

वाणी, चित्त और कर्ममें हिलोरें लेनेवाली आपकी उत्साह शक्तिको देखकर अपनी साठवीं वर्षगांठके महोत्सवको माननेवालोंके सिर लज्जासे झुक जाते हैं ॥ १६ ॥

आलोकितः क्षणमपि प्रकटीकरोषि
ह्यस्मादृशां विविधदोषविशेषभाजाम् ।
बाह्यान्तरं यदपि नाम मलीमसत्वम्
आदर्श एव हि भवानतिशुभ्रशीलः ॥ १७ ॥

स्वयं आलोकित होकर आप अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त हम जैसोंकी जो कुछ भी आन्तरिक और बाह्य मलिनता है, उसे बाहर प्रकट कर देते हैं। अतः स्वयं दोषादियोंसे रहित होनेके कारण अतीव शुभ्र यशवाले आप हमारे लिए आदर्श हैं ॥ १७ ॥

आपत्प्रभञ्जनविघातविचालितोऽपि
निर्वातदीपसदृशः खलु नेङ्गमानः ।
ध्येयस्थिरायितमना श्रुतितत्वबोध--
श्रद्धामयस्त्वमिव कोऽपि न भारतेऽस्मिन् ॥१८॥

आपत्तिरूपी महान् वायुके आघातोंसे मारे जाने पर भी आप वायुरहित दीपकके समान कम्पन विरहित होकर अपने ध्येयमें स्थिर मनवाले हैं। अतः आप जैसा श्रुतिके तत्वबोध में श्रद्धावान् भारतमें कोई नहीं है ॥ १८ ॥

सम्पर्कमाप्य भवतो गुरुवर्यलोके
चित्ते मम स्फुरति यो गुरुगौरवभारः ।
तेनानतोऽस्मि चरणाम्बुजयोः सदैव
स्वःश्रेयसाय भवदाशिषमीहमानः ॥ १९ ॥

आपकी निकटताको पाकर हे गुरुवर्य ! जो गुरुकी गौरवताका भार मेरे चित्तमें स्फुरित होता है, उसके कारण अपने कल्याणके लिए आपके आशीर्वादकी कामना करता हुआ आपके चरणकमलोंमें मैं हमेशा नत हूँ ॥ १९ ॥

तस्मिन्नशेषगुणवज्जनविन्ध्यवन्द्ये
वेदाब्धिपानरसिके सुतपःप्रसिद्धे ।
श्रीपादनाम्नि सदगस्त्यमुनौ नवीने
भक्त्यानतोऽस्ति परया सततं जनोऽयम् ॥ २० ॥

सम्पूर्ण गुणशाली मनुष्यों द्वारा वन्दनीय, वेदरूपी समुद्रके पीनेमें रसिक, तपके कारण प्रसिद्ध श्रीपाद नामवाले नवीन अगस्त्य मुनिके सम्मुख यह जन (कवि) भक्तिपूर्वक सदा नम्र होता है ॥ २० ॥

वेदमाताके अनन्य पुजारी

(लेखक— श्री. पं. रामचंद्र आर्यमुसाफिर)

शताब्दियोंसे सहस्रों संस्कृतके विद्वान् पंडितोंके विद्यमान होते हुए भी वैदिक ज्ञानका सूर्य अस्तप्रायः हो चुका था। वेदोंके केवल नाममात्रका ही ज्ञान भारतीय विद्वानोंको रह गया था। वेद कितने हैं ? और उनमें क्या है ? इनसे मानव समाजका क्या सम्बन्ध है इत्यादि तो दूरकी बात थी ही किन्तु द्विवेदी, त्रिवेदी और चतुर्वेदी कहानेवाले वर्णोंको भी वेदविषयमें किंचित् मात्र भी ज्ञान न था। बल्कि ऐसा कहा जाता है कि वेद भारतसे लुप्तप्रायः हो गया था।

उन्नीसवीं शताब्दिके बालब्रह्मचारी तपोनिष्ठ महर्षि देव दयानन्दने अपने आराध्य गुरुदेवदण्डी विरजानन्दजीसे वेदके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त किया और वेदोद्धारका बीडा उठाया। कहा जाता है कि वेद ऋषि दयानन्दसरस्वतीजी महाराजने जर्मनसे मंगाये थे। जबतक महर्षि इस भूमिपर रहे बराबर वेद प्रचार और प्रवचन करते रहे। अपने जीवनकालमें ही महर्षिने वेदप्रचारके हेतु आर्यसमाज नामकी सुगठित संस्थाको जन्मदिया; जो अपनी शक्तिभर वेदका प्रचार करता चला आ रहा है।

महर्षिके पश्चात् जिस महामानवने वेदका सच्चे अर्थोंमें उद्धार किया वे स्वनामधन्य वेदमाताके अनन्य पुजारी प्रातः-स्मरणीय ब्रह्मर्षि पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी हैं; जो ४० वर्षसे भी ऊपर कालसे वेदाध्ययनमें संलग्न हैं, जिन्होंने अथर्ववेद और ऋग्वेदका सरलसुबोध सर्व साधारणके बोधगम्य व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। यजुर्वेदके अनेक अध्यायोंकी भी व्याख्या पुस्तिकायें प्रकाशितकी हैं। जिनके कई कई संस्करण हो चुके हैं। जिनको पढ कर वेदके अथाह ज्ञान-भण्डारका परिचय पाठक प्राप्त कर सकता है। महर्षि दयानन्दजी महाराजके बाद यदि वेद और वैदिक साहित्यका किसीने न केवल पुनरुद्धार किन्तु जीर्णोद्धार किया है तो वे उक्त पंडितजी ही हैं। आपने वेदके अतिरिक्त महाभारत, वाल्मीकि रामायण, गीता और उपनिषदों आदि ग्रन्थों पर टीकायें करके साथ-साथ सरल व्याख्याके साथ पूर्वापर विषयकी संगतिका ऐसा अनुपम कार्य किया है कि प्रत्येक ग्रन्थका पाठक पंडितजीका आभारी हो जाता है।

वैदिक व्याख्याग्रन्थोंके अतिरिक्त वेदतक सर्वसाधारणकी रुचि हो, प्रत्येक आर्य हिन्दू वेदके स्वाध्यायमें लगे, इसके लिये संस्कृत-भाषा-अध्ययनकी ऐसी सरलतमविधि निकाली है कि आज हजारों व्यक्ति जिनमें आर्य, हिन्दु, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान भाईबहिन घर बैठे थोडेसे परिश्रमसे संस्कृतका ज्ञान प्राप्त कर वेद और वैदिक साहित्यके अध्ययनमें संलग्न हैं।

मैं स्वयं व्याकरणके पढानेवाले पंडितोंके डण्डोंके भयसे संस्कृत छोड भगा था और उर्दु, फारसी मैंने अपनायी, किन्तु पं. जीकी संस्कृत स्वयं शिक्षकसे मुझे बडा ही लाभ हुआ, मैंने तीनों भाग पढे, आगे वह सीरीज नहीं निकली। मगर मेरा प्रवेश होगया उसके बाद उद्योग करते करते मैंने बनारससे राजशास्त्र विषयमें शास्त्री पासकी और आचार्यके दो खण्ड दिये। आज मैं अपनी तथा आर्य समाजकी भी अच्छी सेवा कर रहा हूँ। जीवन सुखमय है। पंडितजीके ग्रन्थोंसे बडा लाभ उठाया है। पं. जीकी संस्कृत साहित्यकी ओर लोगोंकी प्रगति करानेका तथा व्याख्याग्रन्थोंसे वेदोंकी ओर आकर्षित करनेका महान् उपकार है। जिससे देश और हिन्दुजाति उऋण नहीं हो सकती।

वेदके प्रचारमें जब नाम आयेगा प्रथम नाम ऋषिदयानन्द और द्वितीय नाम पूज्य पं. जी का ही आयेगा अन्यका नहीं। वेदमें क्या है ? इस विषयपर पंडितजीने अनेक छोटी मोटी पुस्तकें प्रकाशितकी हैं। जैसे- इन्द्रशक्तिका विकास, वेदमें ईश्वरका स्वरूप, वेदमें राज्यव्यवस्था, वैदिक साम्यवाद, वेदमें दीर्घजीवनकी प्रार्थना, वैदिक देवता, एवं वेद विषयपर अबतक अनेकों बडे उच्चकोटिके खोजपूर्ण व्याख्यान प्रकाशित हो चुके हैं।

छोटे छोटे बच्चोंके वास्ते वेदके द्वारा कर्तव्य शिक्षाका ज्ञान देनेके हेतु धर्म शिक्षाओंकी रचना की है। वेदको भी संस्कृतकी भान्ति स्वयं पढा और समझा जासके इस प्रकार-

[देखिए पृष्ठ ११६

पण्डित सातवलेकर

(लोकनायक डॉ. मा. श्री. अणे संसद्सदस्य)

" भारतवर्षकी सेवा " ही जिनका धर्म व व्यवसाय हो, ऐसे व्यक्ति विरले ही हैं। उन विरले विभूतियोंमें मैं पण्डित सातवलेकरजीकी भी गणना करता हूँ। अपने लिए और अपने कुटुम्बीजनोंके लिए मुझे कुछ करना चाहिए यह विचार विद्यार्थीकी अवस्थासे लेकर आजतक उनके मनमें कभी आया हो, इसीमें मुझे संशय है। उनकी आयुरूपी बिल्लौरी कांचके क्रान्तिकारी, कलाकार और वेदाचार्य ये तीन पृष्ठभाग हैं। उनके उद्योग व व्यवसायमें वैविध्य होते भी हुए जो एकात्मता दृष्टिगोचर होती है, वह उनके जीवनमें विचार, भावना और इच्छा इन तीनोंके स्पृहणीय संगमका ही परिणाम है। वेदाभ्यास करते हुए भी वे एक कलाकार और क्रान्तिकारी थे। उनके वेदभाष्योंमें विचार, भावना और इच्छाशक्ति इन तीनोंका संगम अच्छी तरह दिखाई देता है। वे समस्त भारतीय वाङ्मयकी ओर त्रिविध दृष्टिसे देखते हैं। आज भारतीय शिक्षण पद्धतिमें क्रान्तिकी आवश्यकता है, क्योंकि विदेशियोंने कुत्सित शिक्षाका प्रचार करके भारतीय विद्वानों का ही भारतके प्रति दृष्टिकोण बदल दिया है। इस दृष्टिकोण को हटाकर ऋषियोंका दृष्टिकोण लाना ही क्रान्ति है। पण्डित जी क्रान्तिकारी हैं, अतः उनके कार्योंमें गतानुगतिकताका आभास भी नहीं मिलता।

वेदोंमें उन्हें भव्य सौन्दर्यका दर्शन होता है। 'सुन्दरम्' का दर्शन वेदोंमें वे स्वयं भी करते हैं और दूसरोंको भी हो इसलिए मंत्रोंके मनोवेधक शब्द चित्र लोगोंके सामने प्रस्तुत करते हैं। वेदोंके देवता हाथोंमें विभिन्न रंगोंकी कूंचियोंको हाथमें लेकर बैठे हुए रंगदेवता हैं, जो भारतीय संसार सुखमय और सुन्दर बनाते हैं, यह अनुभव प्रत्येक व्यक्ति पंडितजी के लेखोंको पढकर ले सकता है। इसी प्रकार वेद हमारे उद्धारके साधन हैं, इसका प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं कि वेद मानवीयज्ञानके बीज हैं साथ ही आजतकके ज्ञानका विश्वकोष है। इसलिए जगत्में ज्ञानक्षेत्रको विस्तृत करनेके जो प्रयोग हैं, न वे कभी वेद विरोधी थे और न हैं। वेद सदैव ज्ञानके दर्शक हैं एवं मानवता रूप अमूल्य निधिके संरक्षक हैं। यह पण्डितजीका सिद्धान्त उनके दीर्घकालीन वेदाभ्यासका फल है।

जिससमय लोग भारतकी ओर एक मृत संस्कृतिके अवशेषके रूपमें देखते थे तथा वेदोंको उपेक्षा की दृष्टिसे देखते हुए उनके विषयमें यद्वातद्वा बोलते थे, उस समय वेदाध्ययनकी ऋषियोंकी दिशा कौनसी थी, वह अभ्युदय निःश्रेयस की साधिका किस तरह थी इन सबका निर्भीकता एवं अधिकारपूर्वक सयुक्तिक प्रतिपादन करनेवाले पं. सातवलेकर आधुनिक वेदाचार्य हैं।

उनके द्वारा लिया गया वेदोद्धारका व्रत स्वयंमें एक महान् यज्ञ है। उसकी पूर्तिके लिए परमेश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करें और उनके भारतोद्धाररूपी इस यज्ञकर्ममें सहायक होकर यज्ञनारायणका प्रसाद लेनेकी व उसमें अवभृत-स्नान करके अपना जीवन पवित्र करनेकी सद्बुद्धि भगवान् वैदिकधर्माभिमानी भारतीयोंको दें, यही हमारी हार्दिक अभ्यर्थना है। ● ● ●

पृष्ठ ३३५ परसे]

के वेद स्वयं शिक्षक नामसे १ सीरीज प्रकाशितकी है जो वस्तुतः यथा नाम तथा गुण है।

पूज्य पंडितजीने वेदके अथाह सागरमें निमग्न हो मानव कल्याणके हेतु अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं और करते जा रहे हैं, गुप्तसे गुप्त रहस्योंका उद्‌घाटन करनेमें संलग्न हैं। आजके युगमें यदि पंडितजीको सच्चे अर्थोंमें उपरोक्त महान् कार्योंके आधारपर अभिनन्दन किया जासकता है तो वे एक मात्र वेदरक्षक, वेद–प्राण, वेद–सर्वस्व, आत्योद्धारक। आजके वेद व्याख्याकारोंमें अग्रगण्य शिरोमणि श्री सायणाचार्य हैं अथवा काव्य ग्रन्थोंपर टीका करनेवाले महान् पंडित मल्लिनाथ हैं जिनकी प्रत्येक काव्य ग्रन्थों पर व्याख्या मिलती है।

ऐसे महान् विद्वान् निष्कामयोगी वैदिक संस्कृतिके अद्वितीय पुजारी वेद प्रचारक एवं वेदानुकूल राष्ट्रधर्म प्रसारक पंडितजीके चरणोंमें कोटिशः प्रणाम है। और भगवान्से प्रार्थना है कि वह योगीको इतनी दीर्घायु प्रदान करे कि चारों वेदोंके व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित कर अवशिष्ट वैदिक साहित्यके व्याख्यान भी प्रकाशित करानेमें सक्षम होवें।

लोकसंग्राहक महामानव

लेखक— श्री श्री॰ रा. टिकेकर

★

श्री सातवलेकरजीकी और मेरी पहचान बहुत पुरानी नहीं है, पर फिर भी मेरे पिताजीसे उनकी जान पहचान अच्छी थी। मेरे पिताजीके श्री पंडितजी स्नेही थे, इसलिए उनके विषयमें बहुतसी बातें हम बचपनमें सुनते थे। हमारे घरके बोलचालमें उनका उल्लेख 'बावूजी या श्रीपादराव' के रूप में न होकर 'सोनबा' के रूपमें होता था। 'सोनबा' नाम सम्भवतः उनके बाल्यावस्थाका नाम होगा।

दूसरा संस्मरण 'जग हें त्रिविध' नामक उपन्यासका ध्यानमें आता है। प्रकाशित होनेपर वह सबको पढनेको मिला। इस उपन्यासके तीन मित्रोंके नाम बहुतोंको सम्भवतः आज भी याद होंगे। मुझे आज दूसरे दो मित्रोंके नाम तो याद नहीं रहे, पर उन तीनमेंसे एक हमारे 'सोनबा' भी थे, यह निश्चित है।

लाहोर शिमलामें 'सातवलेकर' नामके एक प्रख्यात छाया चित्रकार हैं, ऐसी ख्याति मैंने सुनी थी और देखा भी था। उनका यह व्यवसाय आज भी दिल्लीमें इन्हींके नाम पर कोई दूसरा चला रहा है। पर नाम मात्र 'सातवलेकरजी' का रूढ है। इससे ज्ञात हो सकता है कि इस धंधेमें भी इन्होंने कितना नाम कमाया था।

मध्यमें महाराष्ट्रमें 'चित्रकला' पर विवादके दौरानमें (संभवतः) श्री वि. स. खाण्डेकरने लिखा था कि 'इस चित्रमें निहित कलाको 'पुरुषार्थ' (मराठी मासिक पत्र) कार सातवलेकर कैसे समझ सकते हैं?' खाण्डेकरकी धारणा यह थी कि 'सातवलेकर' का अर्थ है एक 'वेदाभ्यास जड' पुरुष। कलाकी गंध भी उन्हें नहीं लग सकती। उस समय अनेक मित्रोंने कहा कि 'श्री पंडितजी की चित्रकला विषयक योग्यता इतनी है कि, महाराष्ट्रके प्रथम तीन चित्रकारोंमें उन्हें भी सम्मिलित किया जा सकता है।

लोगोंसे समाज सेवा किस प्रकार कराई जाए इसका तरीका पण्डितजी अच्छी तरह जानते हैं। वे एक दुर्लभ योजक स्फूर्तिदाता, मार्गदर्शक और लोकसंग्राहक हैं। अफगानिस्थानके दौरे परसे जब मैं वापस लौटा तब सरहदके तथा काबुल, गजनी, कंधार इन शहरोंमें स्थापित हिन्दू मंदिरोंकी एक सूची मैंने तैय्यार की। मेरे एक पितृतुल्य वृद्धने मुझसे कह दिया था कि मैं इस सूचीको कहीं न छपाऊं। पर ज्ञात होते ही श्री पण्डितजीने वह सूची मुझसे मांग कर अपने "पुरुषार्थ" मासिकमें छाप दी। उसके कारण इन्हें बहुत कष्ट उठाना पडा।

बादमें बाकू (रूस) में स्थापित एक हिन्दू मंदिरका समाचार उन्होंने मुझे दिया और उसके विषयमें कुछ ऐतिहासिक प्रमाण खोजनेके लिए भी कहा। उस मंदिरका ३–४ सौ वर्ष पूर्वका उल्लेख मैंने खोजकर उन्हें दिखाया, तब उनके द्वारा की गई प्रशंसा मुझे एक बडे सुवर्ण पदके समान प्रतीत हुई।

एक बार श्री पण्डितजीने वेद वाङ्मय शुद्ध रूपसे छापने की योजना मुझे बताई और उसका "कॉपर प्लेट" बनाने का अन्दाज मुझसे पूछा। उसमें खर्च होनेवाले धनका अंदाजा लगने पर मेरे मनमें एक दूसरा ही विचार आया कि 'वेद संहिताओंका रिकॉर्ड ही क्यों न लिया जाए?' उस समय फिल्मी जगत्‌के साथ मेरा थोडा बहुत सम्बन्ध था, इसलिए फिल्म पर वेद पाठक रिकॉर्डिंग करनेकी योजना बनाकर भी अन्दाजा निकाला। चार सौ लेकर चार हजार घंटे तक रिकॉर्ड होनेका अन्दाजा निकाला।

सरकारके वित्तीय सहायताके बिना इस योजना पर खर्च करना किसी एक मनुष्यके बूतेकी बात नहीं थी, इसलिए दिल्ली जाकर डॉ. केसकरसे मिला। और फिल्म्स् डिवीजन के द्वारा वेद संहिताओंका रिकॉर्डिंग करवाया जाए यह भी मैंने सुझाव दिया। श्री पंडितजीने उन्हें संभवतः इसके बारेमें कुछ लिखा भी था, पर कुछ परिणाम नहीं निकला। बादमें श्री नीलू गोखले बम्बईमें फिल्म विभागके मुख्य नियुक्त हुए, तब उनसे प्रार्थना की गई। उन्हें यह योजना पसन्द आई और उन्होंने स्वीकृतिके लिए यह योजना ऊपरके अधिकारियों पर भेज दी। पर सरकारके 'धर्म निरपेक्षता' के कारण यह योजना खटाईमें पड गई। सरकारको इस 'धार्मिक' कार्यका क्या मतलब ? कहकर किसीने यह योजना समाप्त करवा दी।

श्री गोखलेने ही टेप रेकॉर्डिंगकी योजना भी सुझाई उनके एक मित्रके पास टेप रिकॉर्डर भी था। पर उस मित्रसे वह रिकॉर्डर मिलनेके कोई आसार न दीखनेके कारण उसे भी छोड देना पडा।

फिर अमेरिकासे रिकॉर्डर मंगवाकर पारडी जाकर वेद-मंत्रोंके पाठका रिकॉर्डिंग किया। उसमें श्री पंडितजीके कई भाषण भी रिकॉर्ड हुए।

मैंने एक पुस्तक लिखी जिसमें मैंने तोतेके समान वेद-मंत्र रटनेवालों पर बडे व्यंग कसे थे। मैंने यहां तक लिख दिया था कि अर्थज्ञानके बिना मंत्र रटना 'सडक पर मिट्टी डालनेकी मजूरीके समान' ही है। और 'शतपत्र' नामक पुस्तकमें ब्राह्मणनिन्दा की और उनका खूब मजाक उडाया। यदि पण्डित जी उस पुस्तकको न छापते तो मुझे इतना आश्चर्य न होता, जितना कि उनके द्वारा स्वयं अपने छापखानेमें छापने पर हुआ। उन्होंने इस विषय पर मुझसे कभी भी वाद नहीं किया। पर अब मुझे क्रम, जठा, घन आदि वेद पाठोंको इकट्ठा करनेका एक प्रकारसे व्यसन लग गया है।

श्री पंडितजीने अपने मौनसे ही मेरे अन्दर वेदप्रेम उत्पन्न किया। भूलकर भी उन्होंने मुझसे वेद पढनेके लिए एक शब्द भी नहीं कहा। उनके मौनव्रतने ही मुझे वेदोंकी ओर प्रेरित किया, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। और अब मुझे—

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्

इस कथन पर पूरे तौर पर विश्वास आचुका है। अनेक वृद्ध मनुष्योंकी मैंने सेवा की है, और अनेकोंके साथ मैंने कार्य भी किया है, पर श्री पण्डितजी जैसा प्रभावी (प्रत्यक्ष प्रभाव डालनेका प्रयत्न न करते हुए भी) पुरुष मुझे और कोई नहीं मिला। बहुत सा बोलकर भी कई लोग जो चीज नहीं पाते, उसे श्री पण्डितजी अपने मौनव्रत से ही पा लेते हैं। स्वयं काम करनेका उनका विक्रम बहुत बडा है। पर दूसरोंको भी कार्योद्यत करनेमें भी उनका प्रशंसनीय है। उनका आशीर्वादात्मक वरद हस्त हमें चिर-कालतक प्राप्त हो, यही प्रार्थना है।

ब्रह्मर्षि पण्डित सातवलेकर

(लेखक— श्री गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर)

⊙

अनेक मनुष्य जैसे बाहरसे दीखते हैं, वैसे अन्दरसे नहीं होते और कुछ अन्दर जैसे होते हैं, वैसे बाहरसे नहीं दीखते। पर महात्माओंका यह स्वभाव है कि जैसा अन्दर वैसा बाहर। बाहर भीतर एक समान। उनका बाह्य दर्शन भी भव्य होता है और अतरंग भी भव्य।

वैदिकवृत्तिके चिर-तरुण

पण्डित...... नहीं, ब्रह्मर्षि सातवलेकर भी उसी कोटिके हैं। ब्रह्मर्षि सातवलेकर अब ९८ वें वर्षमें प्रवेश कर रहे हैं। 'जीवेम शरदः शतम्' यह ऋषियोंकी प्रतिज्ञा वे यथार्थ करके दिखायेंगे, इसमें संशय नहीं।

पण्डितजीका आहार, विहार शयन, आदि सभी कुछ नियमित है, यदि कुछ अनियमित है, तो वह एक ही है और वह है 'कार्य'। इस विषयमें वे सदा अनियमित रहे हैं। कार्य करनेके विषयमें कोई भी नियम पण्डितजी पालनेको तैय्यार नहीं हैं। ज्यों ज्यों वे सौ वर्षके नजदीक आते जा रहे हैं, त्यों त्यों उनके उत्साह और कर्तृत्वशक्तिमें भी बहार आती जा रही है। 'बूढापन भी एक दूसरा बचपन है' यह कहावत उनके विषयमें पूर्णरूपसे चरितार्थ है। उनके उत्साहमें भी बाल्यावस्था झांकती है। वे चिर-तरुण हैं।

इस वृद्धावस्थामें भी पंडितजीकी मुद्रा तेजस्वी दिखाई देती है। संभवतः वह तेज उन्हें वंशपरम्परासे प्राप्त हुआ हो, पर वंशपरम्परासे प्राप्त सद्गुण भी कई लोग सुरक्षित नहीं रख पाते। विशेषतः 'अंगं गलितं पलितं मुण्डं' इस स्थितिमें तो सभी कुछ बह जाता है। पर पण्डितजीके व्यक्तित्वमें इस अवस्थामें भी ऐसा कुछ आकर्षण है कि दर्शनके साथ ही द्रष्टाके हृदयमें उनके प्रति आदर उत्पन्न होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि आशीर्वादके देनेके लिए किसी तपोवृद्ध ऋषिकी मूर्ति बैठी हो।

भागदौडमें भी योगाभ्यास टूटा नहीं

इस तेजको सुरक्षित रखनेके लिए उन्हें बहुत परिश्रम करना पडा। ठीक तरुणावस्थामें उन्होंने योगाभ्यास शुरु किया उसके बाद विभिन्न कारणोंसे उन्हें अनेक प्रान्तोंमें घूमना पडा। अनेकबार छद्मवेश भी धारण करना पडा। पर इस प्रवासकालमें भी पंडितजीका योगाभ्यास टूटा नहीं।

आजकल योगाभ्यास एक ढोंग हो गया है, पर पण्डितजीने योग ढोंगके लिए कभी नहीं किया।

पण्डितजीका भोजन अतिशय सात्विक है। एक दो बार उनके घर मैंने भोजन किया, बातचीतके दौरानमें ज्ञात हुआ कि पिछले अनेक वर्षोंसे पण्डितजीने मिर्चे बिल्कुल ही छोड दी हैं।

राष्ट्रभाषाके साहित्यवाचस्पति

इस योग और संयमित आहारके बल पर ही पंडितजी आज भी सतत कार्य करते हैं। यद्यपि पण्डितजीकी मातृभाषा मराठी है, पर उन्होंने हिन्दीमें ऐसा गुणसमृद्ध और इतना विपुल लेखन कार्य किया है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलनने बडे आदरसे 'साहित्यवाचस्पति' की उपाधि देकर पण्डितजीका गौरव किया।

पण्डितजीके चिंतन मनन और लेखनका मुख्य उद्देश्य है, वैदिक वाङ्मय। वेदोंके शुद्ध और निर्दोष संस्करणके लिए भारतीयोंको जर्मनीका मुंह ताकना पडा, यह बात पण्डितजीके मनमें तीरके समान चुभी और उन्होंने शुद्ध और निर्दुष्ट वेदोंका संस्करण हर भारतीयको देनेका निश्चय किया।

मुद्रणसम्बन्धी हर दोष पर एक रुपया इनाम

इस कार्यमें पण्डितजीने जो पर्वतसम प्रयत्न किया, वह कल्पनातीत है। उन्हें इसके लिए अखिल भारतमें स्थित वेदपाठशाला, चारों वेदोंकी संहिताओंको कण्ठस्थ किए हुए वेदपाठी, वेदार्थज्ञानके विषयमें प्रसिद्ध पण्डित श्रेष्ठ आदि सभीके साथ सम्बन्ध गांठना पडा। बादमें चारों वेदसंहिताओंका मुद्रण करके उन्होंने सबके पास भेजा और उसके साथ पत्र भी भेजा कि इस मुद्रणमें आप जितने दोष दिखावेंगे उन प्रत्येक दोषके लिए आपको एक रुपया इनाम दिया जायगा।

शुद्धमुद्रणके लिए अपरिमित कष्ट

संहिताओंको छापना कोई विज्ञापन छापनेके समान सरल नहीं है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरचिन्होंको बडे ध्यानसे देखना पडता है। इसी कारण निर्णयसागर, आनन्दाश्रम (पूना) स्वाध्यायमण्डल ऐसे दो तीन छापखाने छोड दिए जाएं तो महाराष्ट्रमें अन्यत्र कहीं भी वैदिक संहिताओं की छपाई नहीं हो सकती।

इसके अलावा पण्डितजीने एक और साहसका काम किया कि २-३ वेदपाठियोंको बुलाकर उनसे संहितायें सस्वर शुद्ध करवाई और उन संहिताओंका " फोटो ब्लॉक " बनवाकर उन्हें छापा।

भिक्षापात्री बने

काम अत्यन्त खर्चीला था और स्वाध्यायमण्डलकी आर्थिक दशा भी ठीक नहीं थी। देशमें धन तो बहुत था, पर वह सब धन चित्रपट निर्माण आदि कार्योंमें नष्ट हो जाता था, वैदिक वाङ्मयके प्रकाशनके लिए द्रव्य देना कोई पसन्द नहीं करता था। इसलिए अपनी उतरती आयुमें भी पण्डितजीने फिर एक बार भिक्षापात्र हाथमें लिया और सारा भारत घूम कर उन्होंने धन जमा किया।

ऊंची कल्पनाओंवाले ऋषि

कुछ समय पूर्व मैं बम्बई एक अपने मित्रके यहां गया। वहां श्री पण्डितजी द्वारा सम्पादित ऋग्वेदकी एक सुन्दर प्रति देखी। उसको देखकर प्रसन्नता हुई कि पण्डितजीके स्वप्नोंमेंसे एक स्वप्न तो कम-से कम पूरा हो गया।

पर पण्डितजी एक ऐसे ऋषि हैं, जो स्वप्न बहुत देखते हैं, एक स्वप्न पूरा होते ही झट दूसरा स्वप्न देखने लग जाते हैं। कभी कभी तो वे एक ही समयमें अनेक भी स्वप्न देखने लगते हैं। औंधमें रहते हुए इन्होंने दो मासिकोंका प्रकाशन प्रारम्भ किया था। पर बादमें किन्हीं कारणोंसे पण्डितजीको भी औंध छोडकर पारडी स्थानान्तरित होना पडा।

ऐसे प्रचण्ड उद्यमवाले पण्डितजीके साथ बात करना भी आनन्द व सौभाग्यका विषय है। पण्डितजीका वैदिक संस्कृति विषयक अभिमान बहुत है। वैदिकज्ञानसे भारतीय दूर दूर ही खिसकते जा रहे हैं यह देखकर पण्डितजी बडे ही दुःखी हैं। विजिगीषु, तेजस्वी, वर्धिष्णु और प्रसरणशील वैदिक संस्कृति पर बौद्धधर्मके क्षणिकवादी तत्वज्ञानका मुलम्मा चढता देखकर पण्डितजी बहुत खिन्न होते हैं और वे उसका कड़ा विरोध करते हैं।

शरीर दुःखमय है, संसार क्षणिक है साथ ही रोग और यातनाओंका भण्डार है, इस प्रकारके निराशामय सिद्धान्त बौद्धधर्मके ही परिणाम हैं। इसके विपरीत शरीर देवोंका वास स्थान है, मनुष्य देह पाकर उत्तमोत्तम कर्म करने चाहिए, उत्तम भोग भोगने चाहिए, सौ वर्ष आनन्दसे जीना चाहिए और अन्तमें शूरतासे परमात्माके निमंत्रणकी प्रतीक्षा करनी चाहिए, यह पण्डितजीका जीवन विषयक तत्त्वज्ञान है।

तत्पर चिन्तनशक्ति

पण्डितजी एक परिश्रमी लेखक हैं। वे किसी गंभीर विषय पर कुछ लिख रहे हों और बीचमें कोई आजाए तो उससे आवश्यक बात कर लेंगे और फिर उनका लेखनसूत्र फिर उसी जगहसे तत्क्षण जुड जाएगा, जहांसे टूटा था। इतनी चिन्तनशक्ति उनमें है।

मित्रमण्डल

पंडितजीका मित्रपरिवार भी विशाल है। उसमें पूज्य श्री गुरुजीसे लेकर कॉंग्रेसी मंत्रियोंतक सबका समावेश होता है। अनेकोंने इनसे चित्रकलाकी शिक्षा ली। इसके साथ ही अनेक वेदाध्यायी भी इनके परम मित्र हैं।

एक संस्मरण

मैं भी इनके सहवासमें दो वर्ष तक रहा। एक दिनकी घटना है कि कुछ समाज कंटकोंको चौराहेमें ही दण्ड देकर मेरे कुछ मित्र रात्रीके करीब नौ बजे अपनी मूंछों पर ताव देते हुए मेरे घर आए। यह आपत्ति हम सभी पर आ सकती थी। पण्डितजी जल्दी ही सो जाते थे। अन्तमें यह सब काण्ड पंडितजीके कानोंतक पहुंचाना ही चाहिए ऐसा निर्णय करके मैं रातके ११ बजे उन्हें उठाने गया। सब सुन करके एक नवयुवकके समान वे उसी दम मेरे साथ घरसे बाहर निकल पडे। मेरे उन शूर मित्रोंसे जब उन्होंने सब हकीकत सुन ली, तो बोले, 'तुम कुछ चिन्ता मत करो, मैं हूं सब ठीक कर लूंगा।' और यह कहकर मैं और पण्डितजी घरसे चल दिए। सब कुछ निपटाकर पण्डितजी जब सोने चले, तबतक २॥ बज चुके थे।

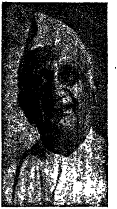
ऐसे ये वयोवृद्ध पर चिरतरुण ऋषि नहीं, महर्षि अपने सब स्वप्न पूरे होनेतक हमारे मध्यमें रहें, यही एक इच्छा है।

× × ×

आ त्म नि वे द न

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

★



वैदिक धर्मका प्रभाव

मैं वैदिक धर्मकी ओर आकर्षित क्यों हुआ ? अपना चित्रकलाका धंधा ही नहीं, राजनीतिक जीवन भी छोड-कर मैं क्यों एकांत निष्ठासे इस कार्यमें लग गया ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मैं आप लोगोंको देना चाहता हूं। कुछ उदाहरण देकर मैं अपनी बातको समझानेका प्रयत्न करूँगा।

अपने जीवनमें वैदिक धर्मके प्रभावकी कई प्रत्यक्ष घट-नाएँ मैंने देखीं। सन् १९०६ में मैंने "वैदिक राष्ट्रगीत" नामक पुस्तक, अथर्ववेदके बारहवें काण्डके प्रथम सूक्तपर लिखी। उसमें उन मंत्रोंका अर्थ और स्पष्टीकरण ही था। इसकी २००० प्रतियां बंबईमें छापी गयीं और उनमेंसे दो-ढाई सौका पहला बंडल ही मेरे पास पहुंचा था कि ब्रिटिश सरकारने उसको जब्त कर लिया। इसका हिन्दी अनुवाद भी इलाहाबादसे छपा था। उसकी भी ३००१ प्रतियां जब्त कर ली गयीं। तीन-चार महीनेमें ही यह सब चमत्कार हुआ। मेरी समझमें नहीं आया कि वेदकी एक छोटीसी पुस्तकसे सरकारको इतना भय क्यों हुआ। परंतु इस घटनासे इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि वैदिक धर्म यदि जनतामें जाग्रत हो तो ब्रिटिश सरकारके लिए भारतमें रहना असंभव हो जायगा।

सन् १९०१ में मैं चित्रकलाके धंधेसे धन कमानेके उद्दे-श्यसे हैदराबाद गया। उस समय मैं लोकमान्य तिलकका अनुयायी था, इस कारण स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वराज्य आदि विषयोंपर व्याख्यान देता था। इसी समय आर्यसमाजसे मेरा संबंध हुआ और ऋषि दयानंदके ग्रंथ मुझे पढनेको मिले। मुझे भाष्य करनेकी उनकी प्रणाली पसंद आयी, क्योंकि उन्होंने वेदमंत्रोंको मानवी व्यवहारकी दृष्टिसे अनूदित किया था। मेरे व्याख्यान भी वेदमंत्रोंके आधारपर होते थे। उस समय जो सभाएं होती थीं उनमें स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडूके पिता, श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय अध्यक्षका स्थान ग्रहण करते थे तथा मेरा काम वक्तृता देना होता था। स्व. केशवराव वकील व्याख्यानोंकी व्यवस्था करते थे। जनताको मेरे व्याख्यान पसंद आते थे और शीघ्र ही पता चला कि राज्यके अंग्रेज रेजीडेंटका ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित हुआ है। उसने निजाम सरकारपर दबाव डालकर हम लोगोंको राज्य छोडनेकी आज्ञा निकलवाई। इस तरह वेद-ज्ञानका प्रचार करनेके कारण ही मुझे हैदराबाद छोडना पडा। इस घटनाका भी मुझपर यही प्रभाव हुआ कि मैं वैदिक-ज्ञान तथा धर्मकी तेजस्वितापर विश्वास करने लगा।

वैदिक प्रार्थनाकी तेजस्विता

हैदराबाद छोडनेके पश्चात् मैं स्व. स्वामी श्रद्धानंदके

पास गुरुकुल कांगडी चला गया। वहाँके विद्यार्थियोंको मैं वेद तथा चित्रकलाका शिक्षण देने लगा। इसी समय महायोगी श्री अरविंदके वेद तथा योग आदि विषयक गंभीर लेखोंसे मेरा परिचय हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैंने वेदकी गहराइयोंमें उतरनेका निश्चय किया। मुझे लगा कि गहरे उतरे बिना उसके रहस्योंसे परिचित होना संभव नहीं है। ऋषि दयानंद और श्रीअरविंद परस्पर पोषक थे। हैदराबादमें मैं थियॉसाफीसे भी परिचित हुआ था तथा उसके अध्ययनसे भी इस समग्र भारतीय ज्ञान-भंडारके प्रति मेरी रुचि बढी।

गुरुकुल आनेपर मैंने मराठीमें "वैदिक प्रार्थनाकी तेजस्विता" नामसे एक लेख लिखा, जो कोल्हापुरके 'विश्ववृत्त' मासिकमें छपा। इस लेखके कारण ब्रिटिश सरकार बहुत रुष्ट हुई। उसने कोल्हापुरके राजापर दबाव डालकर हम सब याने पत्रिकाके संपादक, प्रकाशक, मुद्रक तथा लेखकपर राजद्रोहका मुकदमा चलवाया। जरा विचार कीजिये कि वेदविषयक लेखके कारण राजद्रोहका अभियोग !! संपादक श्री विजापुरकर, प्रकाशक श्री जोशीराव तथा मुद्रक श्री जोशी तीनों ही ३॥ वर्षतक कैदमें रक्खे गये। मैं कोल्हापुरसे दूर था, इसलिए बहुत दिनोंतक पकडा नहीं जा सका, यद्यपि मुख्य अभियुक्त मैं ही था। लेकिन एक दिन मैं भी बंदी बना लिया गया और हथकडीमें कोल्हापुर ले जाया गया। मार्गमें जगह-जगह जनता वेदके लेखकका स्वागत करने स्टेशनोंपर आती थी। डेढ वर्षतक मैं भी जेलमें रहा और मुकदमा चलता रहा। अंतमें हम सब निर्दोष सिद्ध हुए और मुक्त किये गये। इस समय श्रीमती एनी बेसेंट और गायकवाड जैसोंने हमारा समर्थन किया था, परंतु वैदिक प्रार्थनाकी तेजस्विताने जैसे सचमुच प्रकट होकर ब्रिटिश सरकारको प्रभावित किया।

लाहौर-गमन

इसके पश्चात् मैं लाहौर आया और अपना स्टुडियो खोलकर चित्रकला आदिका काम करने लगा। वहाँके आर्यसमाजोंमें मेरे व्याख्यान होने लगे और शीघ्र ही मैं पंजाबके सभी नगरोंमें व्याख्यान देनेके लिए जाने लगा। मैं अधिकतर वेद विषयपर ही बोलता था। पंजाबियोंके साथ मेरा मन मिलने लगा और मैं वहाँ स्थायीरूपसे रहनेका विचार करने लगा।

उस समय पंजाबमें कुख्यात ओडवायर गवर्नर था। उसकी सरकारको मेरे व्याख्यान पसंद नहीं आये। मेरी दुकान तथा घरपर पहरा बिठा दिया गया और आने-जाने वालोंकी निगरानी होने लगी। कई कार्यकर्ता गिरफ्तार भी हुए। मैं वेदपर बोलनेके अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं करता था परंतु उसपर भी रोकटोक होने लगी। अंतमें मुझे लाहौर छोडना ही पडा।

इन सब घटनाओंके कारण मेरे मनपर यह विश्वास जमता ही गया कि वेदमें कोई अंतर्निहित सामर्थ्य है, जो प्रकट होकर यह सब करवाता है। मेरे मनने वेद तथा अन्य धार्मिक साहित्यके ही प्रकाशन तथा प्रसारमें अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देनेका निश्चय कर लिया। लाहौर छोडते समय यही कल्पना मेरे भीतर जड पकड रही थी।

वेद-प्रचारके लिए जीवन-अर्पण

अब मैं दक्षिण महाराष्ट्रके सतारा जिलामें स्थित औंध नामक राज्यमें आ गया, जहांके राजा मेरे परिचित थे। वे बंबईमें मेरे परिचित रहे थे। उनकी सहायतासे सन् १९१८ में मैंने 'स्वाध्याय मंडल' की स्थापना की और वेदानुसंधानका कार्य आरंभ किया। वेद-प्रचारके लिए हिन्दी तथा मराठीमें दो मासिक निकाले, जिनका नाम 'वैदिक धर्म' तथा 'पुरुषार्थ' है। ये अब भी निकल रहे हैं, तथा इनमें एक गुजरातीका मासिक तथा एक संस्कृतका त्रैमासिक और जुड गये हैं, जिनके नाम 'वेद-संदेश' और 'अमृतलता' हैं।

इसके अतिरिक्त मैंने हिंदी और मराठीमें 'भगवद्गीता' मासिक शुरू करके गीताकी 'पुरुषार्थ-बोधिनी' टीका लिखी। इसमें गीताके श्लोकोंके साथ वेद-मंत्रोंकी तुलना की गयी है। इस टीकाका अनुवाद हिंदी, मराठी, गुजराती, कन्नड और अंग्रेजीमें हुआ है।

वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारतके अनुवाद हिंदी और मराठीमें किये। इस तरह वेदानुसंधानका कार्य चलने लगा। पाठकोंने आर्थिक सहायता दी। 'स्वाध्यायमंडल' के भी छः-सात सौ सदस्य बने। आर्थिक कठिनाई रहती थी क्योंकि जितना धन होता था, उससे ज्यादा प्रकाशनका कार्य रहता था। आजतक वही स्थिति है। लेकिन कार्य चलता रहा। सन् १९२२ में तो आर्थिक तंगियोंके कारण सब प्रकाशन बंद ही कर देनेका निश्चय करना पडा। लेकिन ईश्वरकी कृपासे ज्वालापुरके श्री लालचंदजी वाम-

प्रस्थीने २०००) का चेक, बिना मांगे ही भेज दिया। इसके साथ ही स्वामी विश्वेश्वरानंदजीका भी एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि यह धन वेदके शुद्ध मुद्रणके लिए है। अपरिचित धनीकी इस सहायताको मैंने ईश्वरकी आज्ञा ही समझा और वेदके पंडितोंको बुलाकर वेदोंका मुद्रण करवाया। इस समय हमने चारों वेद, डाकव्ययसहित ५) में दिये थे। आज महँगाई इतनी बढ गयी है कि वही चीज हम १५) में भी नहीं दे सकते। तो भी हमने तीन बार चारों वेद छापे और प्रचार किया।

मनुष्य-शरीर ऋषियोंका आश्रम है

वेदोंका अध्ययन जारी रहा। मंत्रोंसे नये नये बोध प्राप्त होते रहे। यहाँ उनका थोडासा स्वरूप बताता हूं।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
वा. यजु. ३४।५५

'प्रत्येक शरीरमें सात ऋषि हैं। ये सातों ऋषि प्रमाद न करते हुए उसका रक्षण करते हैं। ये सात जलप्रवाह जब सोनेवालेके स्थानको जाते हैं, अर्थात् जब मनुष्यको निद्रा लगती है, तब भी दो देव जागते रहते हैं और इस यज्ञशालाका रक्षण करते हैं।'

दो आँख, दो कान, दो नाक और एक मुख— ये सात ऋषि हैं। ये ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा उससे इस शरीररूपी यज्ञसत्रका संरक्षण करते हैं। इसी प्रकार शरीरके भीतर चलनेवाले विभिन्न रक्तप्रवाहोंको सात नदियोंका पवित्र स्थान माना है। सोनेके समय भी श्वास और उच्छ्वास नामक दो देव अपना कार्य करते रहते हैं और उनके कारण जीवनकी गति अप्रतिहत चलती रहती है। मानव-शरीरका यह वर्णन कितना उत्तम है, यह सभी देख सकते हैं।

देवोंकी नगरी

शरीरका वर्णन करनेवाले और भी उत्तम मंत्र देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥३१॥
तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥
अथर्व. १०।२

'आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली यह देवनगरी अयोध्या है। इस नगरीमें सुवर्णमय कोश है, जो तेजसे व्याप्त स्वर्ग ही है। तीन अरों तथा तीन आधारोंवाले इस सुवर्णमय कोशमें आत्मारूपी यक्ष रहता है, यह बात सभी आत्मज्ञानी जानते हैं।'

पृष्ठवंशके मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि आठ चक्र और इंद्रियोंके नौ छिद्र मिलाकर अयोध्या नामक यह देवनगरी बनती है, जिसमें ३३ देव रहते हैं। इसीके भीतर आत्मारूपी यक्षदेवका निवास है वह सुवर्णमय कोशसे ढका हुआ है। आप देखें कि शरीरका यह वर्णन कितना सुंदर तथा सत्य है।

पुरुष कौन है?

अब इस ज्ञानसे पूर्ण पुरुषकी परिभाषा देखिये—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥२८॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥२९॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥३०॥
अथर्व. १०।२

'जो ब्रह्मकी इस पुरीको जानता है, उसे पुरुष कहते हैं। जो अमृतसे आवृत इस ब्रह्मकी नगरीको जानता है, उसे ब्रह्म और ब्राह्म अर्थात् सब देव— आंख, कान, नेत्र आदि— दीर्घ आयु और सुप्रजा देते हैं। जरासे पूर्व उसे ये इंद्रियरूपी देव नहीं छोडते अर्थात् वह दीर्घजीवी होता है। जो ब्रह्मकी इस पुरीको जानता है, उसे पुरुष कहते हैं।'

यह शरीर देवोंकी नगरी है, सात ऋषियोंका पवित्र आश्रम है, अमृतसे युक्त स्वर्गधाम है तथा इन सबकी स्थितिको जानकर दीर्घजीवन प्राप्त करनेवालेको पुरुष कहते हैं आदि बातें वैदिक दर्शनकी देन हैं। इनकी महिमा तथा गौरव दर्शनीय है।

हमारा नवीन जीवन-दर्शन

लेकिन आज हम शरीरको मल-मूत्रका पिंड मानने लगे हैं। अपने ही विषयमें घृणा उत्पन्न करनेवाला इससे निंदनीय वर्णन दूसरा नहीं हो सकता। वेदके अध्ययनसे पूर्व मैं भी शरीरको मल-मूत्रका गोला मानकर उसे तिर-

स्मरणीय मानता था परंतु बादमें मेरा दृष्टिकोण बदल गया। अधिक दिन मेरे जीवित रहनेका कारण शायद यह भी हो सकता है कि मैं अपने शरीरको निंदनीय नहीं मानता, अपितु ऋषि तथा देवोंका मंदिर समझकर उसकी पूजा करता हूं। 'देव' का दूसरा नाम 'त्रिजेर' है। जहां वे रहते हैं, जरा (वृद्धावस्था) पास नहीं आती। देवोंका गुण अमृत देना है। शरीरमें स्थित देवोंसे हम अमृत प्राप्त करते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। प्राचीन ऋषि ये अनुष्ठान करते थे। इसीलिए वे अधिक दिन जीवित रहते थे। आज हम जल्दी मर जानेकी बात सोचते हैं। जीवन-दर्शनमें कितना परिवर्तन हो गया है।

मैं इन्द्र हूं

शरीरके छिद्रोंको इंद्रिय नाम दिया गया है। तात्पर्य यह कि जिनसे इन्द्रकी शक्ति प्रकट हो। इन्द्र अर्थात् साक्षात् परमेश्वर। उसकी अग्निरूपी शक्तिसे वाक्, सूर्यरूपी शक्तिसे आंख, वायुरूपी शक्तिसे प्राण, दिशाओंसे कान आदि बने हैं। हृदयमें इन्द्र स्वयं हैं और वहांसे अपनी शक्ति वितरित करते हैं। इसलिए इन्द्रको 'इदं-द्र' कहते हैं। वह अपनी अभिव्यक्तिके लिए शरीरमें विविध सुराख करते हैं तथा उन सबमें एक-एक देवको बैठाते हैं। स्वयं बीचमें रहकर उनका नियंत्रण करते हैं।

मैं वही इन्द्र हूं। वेद कहता है—

अहं इन्द्रो न पराजिग्ये। ऋग्वेद १०।४८।५

'मैं इन्द्र हूं, मेरी पराजय नहीं हो सकती' इस आत्मविश्वासका अनुष्ठान, देवताओंकी अपने शरीरमें बसनेवाली शक्तियोंका अनुभव करनेवालेको हो सकता है। 'मैं इन्द्र हूं और मेरे अधीन ये ३३ देव हैं; मैं इनका संचालक हूं, इसलिये मेरी उन्नति निश्चित है'– यह वेदके मंत्रोंमें वर्णित ज्ञान है। इस प्रकार अपने मनकी एकाग्रता जिस देवतापर की जायगी, उसकी शक्ति अपने अधीन होकर अपनी सहायिका बन सकेगी।

हमारे पृष्ठवंशमें आठ चक्र हैं, यथा-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्राधार। इनपर मनके संयमसे अनेक शक्तियोंकी प्राप्ति होती है।

मनुष्य- शरीरमें ब्रह्म

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम्।

अथर्व. १०।७।१७

अर्थात् जो पुरुष शरीरमें ब्रह्म देखते हैं, वे परमेष्ठी प्रजापतिको जानते हैं। देव निर्जर हैं, उन देवोंको (संमनसः देवाः) अपने मनके अनुकूल कर लेनेसे मनुष्य वृद्ध होने पर भी जरा-रहित रह सकता है। अधिक आयु होनेपर भी तरुणवत् रह सकता है। वेदमंत्रों द्वारा प्रतिपादित यह अनुष्ठान मननीय है।

अन्तरेण तालुके य एष स्तन इव अवलंबते।
सा इन्द्रयोनिः॥ [ऐ. उ.]

स्पष्ट कहा गया है कि 'तालुके ऊपर मस्तकमें एक स्तन जैसा लटकता है, वही इन्द्र योनि है।' इन्द्र-रस उसी ग्रंथिसे निकलता है। यही रस शरीरको तरुण रखता है। ऐसी ग्रंथियाँ शरीरमें अनेक हैं। आजकल इन ग्रंथियोंके रस इंजेक्शनोंके लिये बाजारोंमें भी मिलते हैं। विचारणीय यह है कि अपने मनको इन ग्रंथियोंपर एकाग्र करके जीवन रस प्राप्त करना उत्तम है अथवा इंजेक्शनके द्वारा इस रसका शरीरमें भरा जाना अच्छा है। वैदिक धर्म यह बतलाता है कि इन दैवी ग्रंथियोंपर मनके संयमन द्वारा नियंत्रण किया जाना चाहिए।

सज्जन लोग विचार करें कि हमें अपने शरीरको 'पीप-मल-मूत्रका गोला' मानकर उसका अपमान करना उचित है अथवा इसी शरीरको देवताओंका मंदिर मानकर उसके अन्दर बसनेवाली अनेक दैवी-शक्तियोंको अपनी मानसिक शक्तिके अनुकूल बनाकर अपना लाभ सिद्ध करना। वेदका कथन है कि अपने शरीरको देवताओंका अधिष्ठान मानो और अपने अन्दर निहित दैवी शक्तियोंको अधीन करके अपना लाभ सिद्ध करो।

राष्ट्रीय एकता

चारों वर्ण परमेश्वरके शरीरके चार अवयव हैं। यह राष्ट्रीय ऐक्यकी उच्च कल्पना वेदने प्रकट की है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ऋ. १०।९

ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय इसके बाहु, वैश्य इसकी जङ्घायें और शूद्र इसके पांव हैं। विराट् पुरुषके ये चार वर्ण चार अवयव हैं। ये चारों एक ही शरीरके चार अवयव हैं, इतनी एकताकी कल्पना वर्णित हुई है। वास्तवमें मानव जातिकी एकताकी कल्पना इसमें निहित है किंतु हम व्यवहारमें राष्ट्रपुरुषपर लगाकर इसे देखते हैं। मानव जातिकी उन्नतिके लिये ऋषियोंने जो प्रयत्न किये, उसका वर्णन अथर्ववेदके एक मंत्रमें इस प्रकार किया गया है—

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षां उपसेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ अथर्व. १९।४१

"सब मानवोंका कल्याण करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियोंने प्रारम्भमें तप किया और दक्षतासे आचरण भी किया। उससे राष्ट्र-बल एवं ओजका निर्माण हुआ, इसलिए सब विबुध इस राष्ट्रके सामने विनम्र भावसे सेवाके लिये उपस्थित रहे।"

स्पष्ट है कि ऋषियोंके प्राथमिक प्रयत्नसे राष्ट्रका निर्माण हुआ और इस राष्ट्रका हित करनेके लिये सब मनुष्य तत्पर रहे। ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्रकी उत्पत्ति हुई है, अतएव इस ऋषि-ऋणसे मुक्त होनेके लिये राष्ट्र-सेवा करनी चाहिए। इसी विषयमें और भी उल्लेख है—

आ यद् वां ईयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ऋ. ५।६६

'हे व्यापक दृष्टिवाले, हे मित्रो! हम सब विद्वान् मिलकर ऐसे विस्तृत स्वराज्यके लिये प्रयत्न करें, जिससे सबका कल्याण हो और जिसका पालन बहुसंख्यकोंके द्वारा किया जाय।

इस मंत्रमें 'बहुपाय्य स्वराज्य' की उच्च कल्पना उत्तम रीतिसे वर्णित हुई है, जिसमें बहुतोंकी सम्मतिसे प्रजापालन होता है। ऐसे विस्तृत स्वराज्यसे जनताके कल्याण करनेके लिये हम सब ज्ञानी सम्बद्ध हों, यही इस मंत्रमें दर्शाया गया है। यहाँ 'स्वराज्य' के विशेषण 'व्यचिष्ठे' और 'बहुपाय्ये' ये दोनों हैं। चारों वेदोंमें राज्य, राष्ट्र आदि शब्द अनेक बार व्यवहृत हुए हैं पर स्वराज्यके अतिरिक्त अन्य किसीके लिए इन विशेषणोंका उपयोग नहीं हुआ है जिससे 'स्वराज्य' की महत्ता स्पष्ट है। 'राज्य' और 'स्वराज्य' में भेद है और 'स्वराज्य बहुपाय्य' इनसे भी श्रेष्ठ है; वह 'जन-राज्य' है। वेदमें वर्णित १०-१२ प्रकारके राज्य-शासनोंमें स्वराज्यको ही ये संज्ञायें दी गई हैं। वेदने स्पष्टतः स्वराज्यकी विशेषतापर प्रकाश डाला है, यह विचारणीय एवं मननीय है।

विधान सभाके सदस्य

यहाँ एक बात विशेष विचार करने योग्य है। उपरोक्त मंत्रमें स्वराज्यकी व्याख्याके साथ-साथ ही विधान सभाके सदस्योंकी योग्यताका भी उल्लेख हुआ है:—

१ ईयचक्षाः— सदस्य संकुचित दृष्टिवाले न हों। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिए।

२ मित्रः— वे आपसमें झगडनेवाले न हों और मित्रवत् व्यवहार करनेवाले होने चाहिए।

३ सूरीः— सदस्यगणोंका विद्वान् होना आवश्यक बतलाया गया है अर्थात् उनमें किसी ग्रंथकी टीका या भाष्य करनेकी क्षमता भी होनी चाहिए।

ये तीन कसौटियां 'बहुपाय्य स्वराज्यकी विधान-सभा' के सदस्योंकी हैं। वर्तमान विधान-सभाके सदस्योंकी कसौटी २१ वर्षकी आयु मात्र है। इसीलिए हस्ताक्षर न कर सकनेवाले भी सदस्य बने हुए हैं। वैदिक स्वराज्य और उस कालकी विधानसभाके सदस्योंकी योग्यताकी तुलना आजसे कोजिए। फिर आप स्वयं ही निर्णय करें कि कौनसी पद्धति श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है।

'प्रजा ही राजा' का सिद्धान्त

वेदोंमें प्रजाको ही शासक (राजा) के अंग और अवयव कहा गया है...

विशो मे अंगानि सर्वतः ॥ ८ ॥
विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ वा. यजु. २०

प्रजाजनोंके आधारपर राजा रहता है और प्रजाजन ही राजरूपी शरीरके अंगादि व अवयव हैं।'

यह कितनी उत्तम कल्पना है कि प्रजाजन और राजासे मिलकर राज्य-शासनका एक शरीर निर्मित हुआ। प्रजाके चुने हुए व्यक्तियों द्वारा राज्य-कार्यका संचालन-शासन, और ऐसे राजा व प्रजाकी जिस राज्य-शासनमें एकता स्थापित हुई हो, उसमें अन्याय क्या कभी संभव है?

ग्राम-सभा और राष्ट्र-समिति

ऋषियोंके तपके पुण्य प्रतापसे 'प्रजा ही राजा' के सिद्धान्तको लेकर सर्वांगीण उन्नतिके लिए प्रभावशाली शासनकी परम्परा प्रतिष्ठित हुई। इस राज्य-शासनकी आधारभित्ति प्रत्येक ग्राममें स्थापित ग्राम-सभाएं थीं, उनसे राष्ट्र-समितिका निर्माण हुआ तथा शासन-तंत्र शुरू हुआ। वेदमें ग्राम-सभाका उल्लेख भी है—

सा उदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्।
सा उदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्।
सा उदक्रामत् सा आमंत्रणे न्यक्रामत्।
अथर्व. ८।१०।८।१२

"जनशक्तिकी उत्क्रान्ति सभा, समिति और आमंत्रण (मंत्रिमण्डल) में परिणत हुई।" ग्राममें ग्राम-सभाका निर्माण हुआ, राष्ट्रमें राष्ट्रसमिति बनी और उसके बाद मंत्रि-मण्डलका गठन हुआ तथा शासनका कार्य संचलित हुआ। ऋषियोंके तपसे ग्रामोंमें ग्राम-सभाएं स्थापित हुईं और ग्रामोंका कार्य विधिवत् चलाया जाने लगा। इसी प्रकार राष्ट्रसमिति व मंत्रिमण्डल बने और इनके द्वारा राष्ट्रका शासन होने लगा। ऋषियोंके तपका यही अर्थ है। आज तो तप करनेका अर्थ कुछ और ही लगाया जाता है। राज्य-शासन शुरु हो जानेपर ऋषियोंकी कामना क्या थी, उसका आभास इससे मिलता है—

'समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्' (ऐतरेय)

अखण्ड पृथ्वी पर एक विधानसे राज्यका संचालन हो, यह ऋषियोंकी आकांक्षा थी। आजके 'यूनो' या संयुक्त राष्ट्र संघ और प्राचीन ऋषि-कालकी 'पृथिव्याः एकराट्' कल्पना समान उद्देश्यकी सी प्रतीत होती है। हमारे ऋषियोंकी यह महत्वाकांक्षा सबके आनन्दका विषय है। ये ऋषि उस प्राचीन समयमें भी समस्त पृथ्वीपर एक राज्य तथा सर्वजनसुखार्थकी भावनासे परिपूरित एक ही विधान हो, ऐसी अपेक्षा करते थे, जो हम आज चाहते हैं, विश्वके समस्त राष्ट्र जिसे चाहते हैं। विश्वमें स्थायी शान्ति, सुख और कल्याणकी यह मनोमुग्धकारी कल्पना भारतीय संस्कृतिकी देन है, ऋषियोंके पवित्र तपसे उद्भूत निधि है, वेदादि शास्त्र इसके प्रमाण हैं।

सेना विभाग

वैदिक कालमें राज्यका सेनाविभाग भी नियम और अनुशासनबद्ध था। वे सात-सातकी पंक्तिमें चलते थे, एक स्थानपर रहते थे तथा उन सबका वेश और शास्त्रास्त्र समान होते थे। आज पश्चिमके देशोंमें जैसी सेना होती है, उसी प्रकारकी वैदिक कालमें होती थी। आश्चर्यकी बात है कि यहां वेदका पठन-पाठन तो होता था, वैदिकोंको दक्षिणा भी मिलती थी परंतु हमारी सेना अनुशासनबद्ध नहीं थी, जिसके कारण हम वर्षों पराधीन रहे। वेदोंपर श्रद्धा थी परंतु उनके उपदेशों पर आचरण करनेकी प्रवृत्ति नहीं थी। वेद-ज्ञानका उपयोग भी हो सकता है, यही पता नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि सच्चे वेद-ज्ञानके प्रचारकी आवश्यकता है।

पुरोहित ही सेनापति

वेदमें हम देखते हैं कि पुरोहित ही सैन्यकी व्यवस्था करता है, सैनिकोंको शिक्षित करता है तथा किलोंकी रक्षा करता है।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः येषामस्मि
पुरोहितः ॥ १ ॥

नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं
पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि
पुरोहितः ॥ ४ ॥

एषां अहं आयुधा सं स्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं
वर्धयामि।
एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः एषां चित्तं
विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ५ ॥ अ० ३।१९

'मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हो, मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी हो, क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी हो, जिसका मैं पुरोहित हूं, उनका तेज बढे। हमारे ज्ञानी और धनी मित्रोंपर जो सेना लेकर हमला करते हैं, वे नीचे गिरें, अवनत हों।

ज्ञानसे मैं शत्रुओंको क्षीण करता हूं तथा स्वजनोंको उन्नत करता हूं। जिनका मैं पुरोहित हूं, उनके शस्त्र अग्नि तथा इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं। उनके राष्ट्रको वीर्यवान् करके शक्तिशाली बनाता हूं। उनका क्षात्र-तेज अविनाशी है। सब देव उनके चित्तका संरक्षण करें!'

यह पुरोहितका वक्तव्य है। उस समयका पुरोहित यह सब करता था। सेनाकी शिक्षा, शस्त्रास्त्रोंकी व्यवस्था, किले तथा नगरीकी रक्षा, शत्रुपर हमला तथा आक्रमणसे अपने राष्ट्रकी रक्षा आदि उसीके काम थे। क्षत्रिय लडते अवश्य थे परंतु योजना करनेवाला पुरोहित ही होता था। कहा गया है—

दण्डा इव इत् गो अजनास आसन्
परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः॥
अभवच्च पुर एता वसिष्ठः
आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥

ऋ ७।३३।६

'गौओंको चलानेवाले कोमल दण्डोंके समान भारत देशके लोग कोमल प्रकृतिके तथा आपसमें झगडनेवाले थे। वसिष्ठ इनका पुरोहित हुआ और उनकी उन्नति हुई।'

आजके पुरोहितोंसे क्या उनकी तुलना हो सकती है। मनु कहता है—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

मनु. १२।१००

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति॥

मनु. १२।९७

'चार वर्ण, तीन लोक तथा चार आश्रम और तीन कालोंमें होनेवाले सब कर्तव्य वेदसे सिद्ध होते हैं। सेनापतिका कार्य, राज्यशासन, दण्डनीतिका व्यवहार तथा सब लोकों पर अधिकारके सभी कार्य वेद जाननेवाला सुगमतासे कर सकता है।'

मनुस्मृतिकी यह साक्षी देखकर प्रतीत होता है कि वेदमें व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सभी कर्तव्योंका निर्देश है। इसलिए आजके दिन वेदका अध्ययन तथा संशोधन करनेकी विशेष रूपसे आवश्यकता है। हम अपनी क्षमताके अनुसार कई भाषाओंमें प्रकाशनका यह कार्य कर रहे हैं। और भी बहुतसा कार्य करना शेष है। हमारी इच्छा है कि पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें वेद-ज्ञानको प्रकाशित करें, जिससे उसे सभी बालक अपने स्कूलकी शिक्षाके साथ ही पढ सकें। साथ ही वैदिक सूक्तियोंके संकलन, जो बहुत बोधक तथा उत्साहवर्धक हैं, प्रकाशित किये जाँय। वेदसंबंधी विभिन्न विषयों पर, जनताकी दृष्टिसे, हम बहुतसे छोटे-छोटे व्याख्यान भी प्रकाशित कर रहे हैं, जिनका मूल्य भी बहुत अल्प है।

यह समस्त कार्य बहुत बडा है। किसी भी एक व्यक्तिके लिए इसे करना संभव नहीं। इसके लिए बहुतसे विद्वान् एक साथ लगने चाहिए तथा बहुतसा धन भी अपेक्षित है। पाठकोंकी प्रतिक्रियासे यह सिद्ध होता है कि वैदिक धर्मके प्रति जनतामें प्रेम बढ रहा है। अखिल भारतके श्रेष्ठ पुरुषोंमें इसका महत्त्व स्वीकृत हुआ है। यह पाठकोंका प्रेम प्रकाशनके ठोस कार्यमें परिणत हो, यही परमेश्वरके निकट मेरी प्रार्थना है।

मानवजीवनको दुःखसे भरा हुआ यदि मान भी लिया जाए, तो भी उस दुःखसे हार खाकर परलोककी ओर मुड जाना कायरता ही है। यह उपदेश पण्डितजी सदृश हिन्दुधर्माभिमानी महापुरुषके मुखारविन्दसे हिन्दुसमाजको सुननेके लिए मिलता है, यह सचमुच हिन्दुसमाजका सौभाग्य ही है। —श्रीपाद जोशी

\+ + +

जिस आयुमें सर्वसामान्य मनुष्य सिवाय "हरि हरि" करनेके और कुछ नहीं कर सकता, उसी आयुमें श्री पण्डितजी अपनी वाणी और लेखनीसे राष्ट्रमें जनजागरणका महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभा रहे हैं।

—श्री. भा. वर्णेकर

जीवतात् शरदः शतम्

दयालवः प्राणिषु सौख्यहेतवः
समस्तसंसारहितं चिकीर्षवः।
भवन्ति वन्द्याः नहि कस्य साधवः
सदा सदन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ १ ॥

दयावान्, समस्त संसारके प्राणियोंके सुखकी चिन्ता करनेवाले, सारे संसारके कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले, हमेशा अच्छे अन्तःकरणसे युक्त सज्जन पुरुष किसके वन्दनीय नहीं होते ॥ १ ॥

पदे वसति श्रीर्यस्य यश्च दामोदरसुतः।
सातवलेकराख्यः सः जीवतात् शरदः शतम् ॥ २ ॥

जिनके पैरोंमें लक्ष्मी निवास करती है (श्रीपाद), जो श्री दामोदरके पुत्र हैं, ऐसे सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध विद्वान् सौ वर्षतक जीवें ॥ २ ॥

शास्त्रज्ञः श्रुतिपारगः सहृदयः नूनं सतां अग्रणीः
शूरः सच्चरितः कलंकरहितो मानी कृतज्ञः कविः।
दक्षो धर्मरतः सुशीलगुणवान् विद्वांश्च सम्मानितः
श्रीपादश्शरदां शतं हि ससुखं जीव्याच्चिरं स्वस्तये
॥ ३ ॥

जो शास्त्रोंको जाननेवाले, वेदविद्यामें पारंगत, सहृदय, सज्जनोंमें अग्रगण्य, शूर, चरित्रवान्, किसी प्रकारके कलंकसे रहित, स्वाभिमानी, कृतज्ञ, क्रान्तदर्शी या दूरदर्शी, दक्ष, सदा धर्ममें रत, सुशील, गुणोंसे युक्त तथा विद्वानोंके द्वारा सम्मानित हैं ऐसे श्रीपाद सातवलेकर कल्याणके लिए सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीवें ॥ ३ ॥

सोढ्वाऽपि कष्टं बहुशो यतित्वा
उद्धारणं येन कृतं श्रुतीनाम्।
सोऽयं महात्मा प्रथितोऽत्र विश्वे
जीव्याच्चिरं लोकसमृद्धिहेतुः ॥ ४ ॥

बहुतसे कष्टोंको सहकर भी अपने प्रयत्नोंसे जिन्होंने वेद-विद्याका उद्धार किया, संसारमें प्रसिद्ध तथा मानवताकी समृद्धिके कारण वे महात्मा बहुत कालतक जीवें ॥ ४ ॥

गीता-सुबोधिनीं टीकां विलिख्योऽयं कवीश्वरः।
व्यदधात्सुलभान्वेदान्, वन्द्यः स्यान्नहि कस्य सः
॥ ५ ॥

जिन कवीश्वरने गीता-पुरुषार्थबोधिनी टीका लिखकर वेदोंको सर्वजन सुलभ बनाया, वे किसके वन्दनीय न हों
॥ ५ ॥

प्रसृता विमला कीर्त्तिः तस्य या भुवि मण्डले।
तयैव हि सिताः केशाः, न ते वार्धक्यद्योतकाः ॥ ६ ॥

इस कारण उनका भूमण्डलमें जो विमल यश फैला है, उसी यशके कारण उनसे बाल सफेद दिखाई पड रहे हैं, वे (सफेदबाल) उनके वृद्धावस्थाके द्योतक नहीं हैं ॥ ६ ॥

एवं भूतो महात्मा सः जीवतात्सुचिरं खलु ॥
सुस्वस्थः ससुखं चापि लोककल्याणहेतव ॥ ७ ॥

इस प्रकारके वे महात्मा संसारके कल्याणके लिए सुखपूर्वक स्वस्थ होकर अनन्तकाल तक जीवित रहें ॥ ७ ॥

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु।
यस्याऽस्ति श्रीमान् स सदास्तु स्वस्थः जीव्याच्चिरं पूतमना मुनीन्द्रः ॥ ८ ॥

जिनकी सब प्राणियोंसे मित्रता, आत्मदृष्टिमें आनन्द और दुःखी प्राणियों पर हमेशा कृपा रहती है, ऐसे पवित्र मनवाले, ऐश्वर्यवान् तथा मुनियोंमें इन्द्ररूप सातवलेकरजी चिरकाल तक जीवें।

देवनागरी लिपिकी श्रेष्ठता

(लेखक— श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर)

वैदिककालमें भी लेखनकला प्रचलित थी। उस समय भी लोग अपने विचारोंको ग्रंथका रूप दिया करते थे। प्रायः लोगोंकी यह धारणा है कि वैदिक ऋषि लेखनकलासे अनभिज्ञ होनेके कारण अथवा उस समय किसी अक्षर या लिपिका आविष्कार न होनेके कारण सारा वैदिकसाहित्य कर्णपरम्परया कण्ठस्थ किया जाता था। वेदसंहिताओंको इसीलिए 'श्रुति' कहते हैं कि, शिष्यवर्ग अपने गुरुओंसे सुन सुन कर वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ किया करता था। पर मेरा विचार ऐसा है कि ऋग्वैदिककालमें भी अक्षरों एवं लिपियोंमें लेखनकला प्रचलित थी। इसी लेखनकलाके विषयमें एक बार स्वर्गीय श्री बलवन्त नागेश दातारका एक लेख प्रकाशित हुआ था, उसमें उन्होंने भी यह बताया था कि ऋग्वैदिककालमें अक्षर एवं लिपि न होनेसे लेखनकला प्रचलित नहीं थी। उसके उत्तरमें मैंने उन्हें लिखा कि स्वयं वेदमंत्रोंमें इस बातका वर्णन है कि उस समय भी लेखनकला विद्यमान थी। जैसे ऋग्वेद १।७१।४में आया है कि "उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं" अर्थात् एक मनुष्य वाणीको देखते हुए भी नहीं देखता। इस वाणीको अक्षर या लेखनके बिना कैसे देखा जा सकता है? अतः उस समय वेद लिखे जाते थे, पर अशिक्षित जन उसको देखते हुए भी पढ या समझ नहीं पाते थे। इसके अतिरिक्त अथर्ववेदके १९।७२।१ में ऐसा भी एक मंत्र आया है जिससे प्रतीत होता है कि उस समय वेद ग्रंथ रूपमें मौजूद थे, उस मंत्रका अर्थ इस प्रकार है—

"जिस सन्दूकसे हमने वेदको निकाला था, उसी सन्दूकमें इसको हम फिर रख देते हैं, क्योंकि हमारा काम पूरा हो चुका है।"

इस मंत्रमें वेदको सन्दूकसे निकालना और फिर उसीमें रख देना यह बताता है कि वेद उस समय ग्रंथ रूपमें लिखे जा चुके थे।

वेदोंमें 'अक्षर' शब्द कई बार आया है। अक्षरका अर्थ लोकमें प्रसिद्ध ही है। 'अक्षीणि रमन्ते यस्मिन्' जिसमें आंखें रमजाएं, उसे अक्षर कहते हैं। सुन्दर लिखावटमें आंखें रम जाती हैं। निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्यने अक्षरका अर्थ 'स्वर' किया है। 'ऋक्प्रातिशाख्य' में भी कहा है 'स्वरो अक्षरं' अर्थात् अ, आ, इ, ई आदि स्वर अक्षर हैं।

पाश्चात्य पण्डितोंका मत

पाश्चात्यपण्डितोंका मत ऐसा है कि भारतमें प्राचीनकालमें लोगोंको लेखनकला अवगत नहीं थी। मेक्समूलरने अपने History of ancient Sanskrit literature में लिखा है कि 'पाणिनिकी परिभाषामें एक ही शब्द ऐसा नहीं मिलता, जिससे यह प्रमाणित हो कि प्राचीन भारतीयोंको लेखनकला आती थी'। पाणिनीका समय ईसापूर्व चौथे शतकका है। अतः मेक्समूलरका कथन है कि पाणिनीके समयतक भारतमें लेखनकला नहीं थी। बर्नेलने 'साऊथ इण्डियन पॉलिग्राफी' में लिखा है, कि भारतीयोंने लेखनकला फिनिशियन लोगोंसे सीखी। और ये फिनीशियन ईसापूर्व पांचवें शतक तक भारतमें नहीं आए थे, अतः उस समयतक भारतमें लेखनकला नहीं थी। पर बुहलरने सिद्ध किया है कि ईसापूर्व दसवें शतकमें भी भारतमें लेखनकला विद्यमान थी।

भारतमें लेखनकलाकी प्राचीनता

हमारे पूर्वजोंका कहना है कि लेखनकलाकी उत्पत्ति ब्रह्मदेवसे हुई थी। "आन्हिकतत्त्व" में बृहस्पतिने कहा है— "धात्राऽक्षराणि सृष्टानि"। नारद स्मृतिमें भी लिखा है—

नाकरिष्यद्यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरुत्तमम्।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यच्छुभा गतिः॥

"अर्थात् यदि ब्रह्मा लेखनकला न बनाता तो लोगोंकी यह शुभ गति कभी न होती।"

चीनी यात्री हुएन्त्सांग ई. स. ६२९ से ६४५ तक भारतमें था, उसने भी लिखा है कि " भारतमें वर्णमालाकी उत्पत्ति ब्रह्मदेवसे उत्पन्न हुई है और वह तबसे लेकर अब तक हिन्दुस्तानमें चली आ रही है।" (Samual beal, Buddhist Records of the western world, part I, pp. 77)

पाणिनीय अष्टाध्यायीमें लेखनकला

मेक्समूलरका यह मत कि पाणिनी अष्टाध्यायीमें लेखनकलाका वर्णन नहीं है, गलत है। क्योंकि पाणिनीने लिपि, लिबि, लिपिकर इन शब्दोंकी सिद्धिके नियम बताए हैं। अष्टाध्यायी ३।२।११के सूत्रमें आए लिपि व लिबि शब्दोंका अर्थ " लिखना " है। पाणिनीको अपने कालमें लिखे गए कई ग्रंथोंकी जानकारी थी। भिक्षुशास्त्र व नाट्यशास्त्र ये दो ग्रंथ उस समय अस्तित्वमें थे (अष्टा. ४।३।११०-११) अष्टाध्यायीमें महाभारत ग्रंथका भी उल्लेख है (६।२।३८) अतः यह मानना पडेगा कि पाणिनी कालमें लेखनकला थी।

यजुर्वेदमें लेखनकला सम्बन्धी उल्लेख

यजुर्वेदमें ' अक्षर ' शब्द कई बार आया है। ३३।५९ में ' अक्षराणां अच्छा रवं जानती प्रथमा गात् ' ऐसा आया है। इसका अर्थ उव्वटने ' अक्षराणां अकारादीनां रवं जानती प्रथमा अगात् गच्छति " ऐसा किया है। दूसरी जगह ब्रह्मा उद्गातासे पूछता है, कि यज्ञमें कितने अक्षर हैं, उद्गाता उत्तर देता है कि यज्ञमें सौ अक्षर हैं। इसके अलावा वेदोंके छन्द भी अक्षरों पर आधारित हैं, जैसे गायत्रीमें २४ अक्षर, उष्णिक्में २८ अक्षर आदि। इससे ज्ञात होता है कि यजुर्वेदकालमें अक्षरज्ञान लोगोंको था।

ऋग्वेदमें वाणीको अक्षरोंसे मापनेकी बात कही है (अक्षरेण प्रतिमिमे- ऋ. १०।१३।३)

अथर्ववेदमें एक जगह " यद्यद्युक्तं लिखितमर्पणेन (१२।३।२२) ऐसा उल्लेख आया है। इसका अर्थ है कि जो कुछ सुव्यवस्थासे लिखित या प्रकाशित है।" वेदोंमें कई जगह " लिख्-लेखने " धातुका भी प्रयोग हुआ है।

उपरोक्त प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि वैदिककालतक संस्कृत लिपि अपनी पूर्णावस्थातक पहुंच चुकी थी और इसकी वर्णमाला तैय्यार हो गई थी।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि उस समय लेखनकला थी, तो लिपि कौनसी प्रचलित थी? इस विषय में लोगोंका मत है कि उस समय ब्राह्मी लिपिका ही उपयोग किया जाता था। इसी ब्राह्मी लिपिमें आगे चलकर विकृतियां आईं और उसीसे आधुनिक देवनागरी लिपिकी उत्पत्ति हुई।

देवनागरी लिपिकी उत्पत्ति व श्रेष्ठता

हिन्दुस्तानमें जो अनेक लिपियां हैं, उन सबकी उत्पत्ति इसी ब्राह्मी लिपिसे ही हुई है। प्राचीनकालमें ब्राह्मी और खरोष्ठी ये दो लिपियाँ थीं, उनमें ब्राह्मी लिपि नागरीकी तरह बायींसे दांयी ओर लिखी जाती थी और खरोष्ठी उर्दूकी तरह दांयीसे बायीं ओर लिखी जाती थी। उस समय ब्राह्मी लिपि ही ज्यादा मान्य थी। आगे चलकर ब्राह्मी लिपिकी तीन शाखायें फूटीं, (१) उत्तरीय, (२) दक्षिणीय, (३) पाली। इनमें उत्तरीय ब्राह्मी लिपिमें राजस्थानी, गुजराती और देवनागरी आदियोंका समावेश होता है। दक्षिणीय लिपिसे तामिळ, तेलुगु, कन्नड आदि लिपियां निकलीं और पालीसे सिंहली, यवद्वीपी आदि भाषाओंकी उत्पत्ति हुई।

आज विश्वमें प्रचलित लिपियोंमें सर्वश्रेष्ठत्व देवनागरी लिपिका ही है। इसका प्रमुख कारण एक यही है कि इसका सीधा सम्बन्ध देवोंकी भाषा संस्कृतसे है। इसके अलावा अन्य भी कारण हैं जो इसप्रकार हैं—

(१) विस्तृत वर्णमाला।
(२) उच्चारणकी सुविधा।
(३) वैज्ञानिकता।
(४) भ्रान्तिरहितता।
(५) लेखनमें सुविधा।

अब इस पर विस्तारसे विचार करते हैं।

विस्तृत वर्णमाला

किसी भी लिपिकी विशेषता या श्रेष्ठता उसके वर्णमालामें रहती है। इस दृष्टिसे देवनागरी लिपि समृद्ध है। इस लिपिमें कुल ५२ वर्णमाला है, जो विश्वके किसी भी देशभाषाकी लिपिमें नहीं मिलती। तुलनात्मक अध्ययनसे पता चलता है कि आजकी प्रसिद्ध रोमन लिपि भी नागरी लिपिके सामने

कुछ नहीं है। रोमन लिपिमें संयुक्ताक्षरोंकी बडी समस्या है। रोमन लिपिमें कुल २६ वर्ण हैं। उसमें कई वर्ण तो केवल एक ही अक्षरसे बनाए जाते हैं, जैसे देवनागरीमें अ आ, इ ई, उ ऊ ऐसे ह्रस्व और दीर्घ भेदसे दो दो स्वर बनते हैं, पर रोमन लिपिमें अ आ के लिए केवल A, इसीप्रकार इ ई और उ ऊ के लिए I और U ही प्रयुक्त होता है, इससे अनेक जगह उच्चारणमें या समझनेमें कठिनाई पडती है। इसी प्रकार भारतीय भाषाओंमें सर्वाधिक साहित्यवाली तामिल भाषा वर्णमालाकी दृष्टिसे सर्वथा निकृष्ट है। नागरी लिपिमें हर वर्गमें ५-५ अक्षर होते हैं (क, ख, ग, घ, ङ आदि) पर तामिलमें वर्गके प्रथम चार अक्षरोंके लिए एक ही अक्षर है। अतः उस भाषामें "कबूतर" को "कबूतर, खबूतर, गबूतर, घबूतर" भी पढा जा सकता है। उस लिपिमें पाठक को प्रसंगानुसार वर्णका उच्चारण निश्चित करना पडता है। यही दशा अन्य भाषाओंकी लिपिके साथ भी है।

उच्चारणकी सुविधा

नागरी लिपिकी यह दूसरी विशेषता है। इस लिपिमें जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है। अ आ का उच्चारण भी अ आ के समान ही होगा। जब की अन्य लिपियोंमें लिखा कुछ और जाता है और बोला कुछ और जाता है। रोमन और पार्शियन लिपिमें तो यह कठिनाई अत्यधिक है। रोमनमें लिखा जाता है डी और उसका अर्थ होता है ब या लिखा और बोला जाता है डब्ल्यू और उसका अर्थ होता है व। इसी प्रकार एक एक वर्णके अनेक अर्थ निकलते हैं जैसे A से ए, अ, आ, u से उ ऊ और अ। उदाहरणार्थ Bat, Ashok, Ram इन तीनोंमें केवल A का ही उच्चारण क्रमशः ए अ और आ के रूपमें होता है। इसी प्रकार But और Put में केवल u का ही क्रमशः अ और उ के उच्चारण-में आता है। Unity में u का उच्चारण उ न होकर यू होता है। रोमन लिपिमें कई ऐसे भी शब्द हैं जिनमें एक वर्ण लिखा तो जाता है, पर उसका उच्चारण नहीं किया जाता, जैसे Bridge में d का उच्चारण न होकर केवल ब्रिज ही होता है या Catch का उच्चारण केट्च न होकर केच ही होता है, t अनुच्चारित ही रहता है।

रोमनलिपिमें संयुक्ताक्षर भी एक समस्या है, Dh को ढ, ध, दोनों ही पढा जा सकता है। इसीप्रकार उर्दू लिपिमें भी पहले वर्णका उच्चारण होता है अलिफ् उससे वर्ण "अ" ही निकलता है। इस प्रकार उच्चारणकी दृष्टिसे भी नागरी लिपिकी श्रेष्ठता है।

वैज्ञानिकता

देवनागरी लिपिकी वैज्ञानिकताका परीक्षण करनेके लिए, एक पाश्चात्य भाषाशास्त्रीने प्रयत्न किया। उसने मिट्टीके अ, आ, इ, ई आदिवर्णोंके आकार बनाये, वे आकार अन्दर से पोले थे। जब उसने उन आकारोंमें फूंक मारी, तो अ के आकारसे अ की ध्वनि, इ के आकारसे इ की ध्वनि निकली। इस परीक्षणके बाद उसने अपने लेखमें लिखा कि देवनागरी लिपि जितनी वैज्ञानिक है, उतनी संभवतः संसारकी किसी भी भाषाकी लिपि नहीं है।

इस लिपिकी वैज्ञानिकताका दूसरा प्रमाण है, नागरी लिपिके वर्णोंके उच्चारणके स्थानोंकी निश्चितता। हमारे पूर्वजोंने इस लिपिके प्रत्येक वर्णका स्थान मुखमें निश्चित कर दिया था। वर्णोच्चारणके क्रियाकलापका वर्णन एक श्लोकमें इस प्रकार किया है—

'कुछ बोलनेकी इच्छासे आत्मा बुद्धिके साथ संयुक्त होकर मनको प्रेरित करती है, मन शरीरकी अग्निको प्रेरित करता है। अग्निके कारण वायु पैदा होकर वह छातीसे गुज-रती है, और मुखके विभिन्न स्थानों पर टकराकर वह वायु वर्णोंको पैदा करती है'।

उन वर्णोंका मुखमें स्थान इस प्रकार निश्चित किया है।

अ, कवर्ग, ह	इनका स्थान	कण्ठ है
इ, चवर्ग, य, श	,, ,,	तालु है
लृ, तवर्ग, ल, स	,, ,,	दन्त है
ऋ, टवर्ग, र, ष	,, ,,	मूर्धा है
उ, पवर्ग	,, ,,	ओठ है
ञ, म्, ङ्, ण, न	,, ,,	नाक है
ए ऐ	,, ,,	कण्ठ तालु
ओ, औ	,, ,,	कण्ठ ओठ
व	,, ,,	दांत और ओठ है

इस प्रकार इन वर्णोंके स्थान मुखमें निश्चित हैं। अतः स्थानोंके द्वारा नियंत्रित होनेके कारण इनके उच्चारणमें शुद्धता रहती है। ऐसी वैज्ञानिक प्रणाली अन्य किसी लिपिमें नहीं है।

भ्रान्तिरहितता

जैसे लिखा जाता है वैसा ही उच्चारण भी किया जाता है, इसलिए नागरी लिपिमें भ्रान्ति नहीं होती । रोमन लिपि में जब एक विद्यार्थी पढता है, कि But बट होता है और put पुट, तो उसे शंका होती है कि एक जगह यू का उच्चारण उ होता है और दूसरी जगह अ, इसका कारण उसे अध्यापक भी बतानेमें असमर्थ रहते हैं । अतः रोमन वर्णोंके उच्चारणमें विद्यार्थी भ्रान्ति युक्त ही बना रहता है । इसी प्रकार उर्दू लिपिमें ' अजमेर गया ' को पढनेवाला ' आज मर गया ' यह भी पढ सकता है । पर ऐसी भ्रान्ति नागरी लिपिमें नहीं है ।

लेखनकी सुविधा

नागरी लिपि लिखनेमें भी सरल है । उसके स्वरकी मात्रा, व्यंजन सब सरल हैं । नागरी लिपिमें एक शब्दमें वर्ण भी कम होते हैं, जब रोमन लिपिमें उसी शब्दको लिखनेके लिए अनेक वर्ण लगाने पडते हैं ।

इस प्रसंगमें मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि नागरी लिपिमें स्वर लिखनेकी प्राचीन पद्धति ही वैज्ञानिक है । आज उस पद्धतिको काका कालेलकर एवं श्री विनोबाने बिगाड दिया है । ' उसका ' लिखनेकी जगह ' अुसका ' लिखनेकी पद्धति श्री विनोबाके मस्तिष्ककी उपज है, जो सर्वथा गलत है । इससे लिपिकी वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है ।

इन विशेषताओंके कारण नागरी लिपिकी श्रेष्ठता है । कुछ आधुनिक भारतीय विद्वान् भी नागरी लिपिके स्थान पर रोमन लिपिको लाना चाहते हैं, और नागरी लिपिकी श्रेष्ठता पर आक्षेप करते हैं । पर उनका यह आक्षेप निराधार है । नागरी लिपि जैसी सरलता रोमन लिपिमें नहीं है । नागरी लिपिमें संस्कृत जितनी शुद्धता एवं सहजगम्य रूपसे; लिखी जा सकती है, उतना रोमन लिपिमें नहीं ।

इन सब विशेषताओंको दृष्टिमें रखते हुए मेरा विचार यही है कि विश्वकी किसी भी भाषाकी लिपि देवनागरी लिपिका स्थान नहीं ले सकती ।